लीला-दर्पण

श्री सनातन आश्रम, गौराबाग, कुर्सी रोड, लखनऊ

लीला-दर्पण

श्री सनातन आश्रम, गौराबाग, कुर्सी रोड, लखनऊ
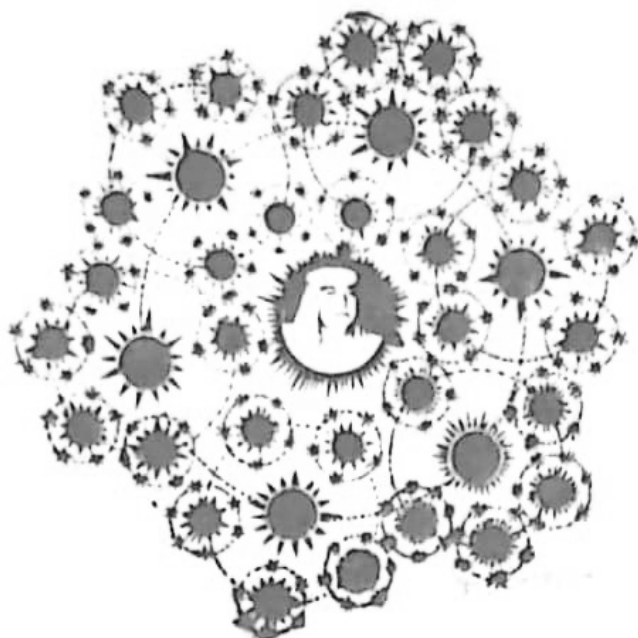
"सनातन स्वामी! हमारे बच्चे को आशीर्वाद दो। हमारा बेटा मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम सा बने! धर्मपुत्र युधिष्ठिर और सत्यवादी हरिश्चन्द्र सा हो!"

"इस बच्चे को पढ़ा रहे हो न?" सन्यासी ने पूछा।

"हाँ! अच्छे स्कूल में पढ़ता है!"

"सच बताओ क्यों पढ़ा रहे हो? इसीलिये न! कि अच्छी नौकरी मिले, मोटी तनखा और खूब मोटी ऊपर की आमदनी? सन्यासी ने पुनः प्रश्न किया।"

"सारी दनिया तो यही कर रही है!" भक्त ने कुछ सहमते हुए कहा।

"दुनिया की बात छोड़ो! तुम बालक को भगवान राम सा पवित्र बनाना चाहते हो अथवा ....??"

कैसी थी वह शिक्षा! कैसे थे वे लोग! वे आपके ही पूर्वज थे! आइये लीला-दर्पण में अपने आज और कल के रूप निहारें।

श्री सनातन आश्रम, गौराबाग, कुर्सी रोड, लखनऊ

~~मूल्य : "सनातन प्रेम"~~

★

मुद्रक :द्वितीय संस्करण
लखनऊ प्रेस
बाबूगंज, डालीगंज, लखनऊ
मोबाइल : 78008 46038

★

प्राप्ति स्थानः
❖ **श्री सनातन आश्रम**
गौरा बाग, कुर्सी रोड,
गुडम्बा थाने के सामने, लखनऊ-20
मोबाइल : 8707651736, 8853102374

★

❖ **शिव शान्ति सदन**
179, सराय हसनगंज,
बालाजी साड़ी के सामने,
बाबूगंज पुलिस चौकी के सामने,
लखनऊ-226020
मोबाइल : 98380 77297, 70809 16201

लीला–दर्पण

अष्टमी की अन्धेरी रात। कंस की जेल की सीलन भरी कोठरी। हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़े वीर, तपस्वी वसुदेव। प्रसव की पीड़ाओं से अचेत, पवित्र देवकी। द्वार पर सजग खड़े प्रहरी। प्रत्येक आहट पर चौंक पड़ते हैं। ..... अभी नवजात शिशु का रुदन होगा, वे दौड़ कर कंस को सूचना देंगे। उन्हें कंस से बहुत सा पुरस्कार मिलेगा। हल्की सी आहट भी चौंका देती है, उनको। हाथों में भाले लिए, लालच भरी निगाहों से झांकते भयानक चेहरे। भावी की कल्पना से सिहर उठते वसुदेव। अन्धेरी फिसलती अस्पष्ट फुसफुसाती अष्टमी की अन्धेरी रात। द्वार पर मशाल की रोशनी, जिसकी थरथराती किरणें उस कोठरी के वातावरण को और भी अधिक भयावह बना देती हैं। वायुदेव स्थिर हैं। गगन घने बादलों से गहराया हुआ। कौंधती बिजली का पीछा करती, दिल को दहलाने वाली गड़गड़ाहट-फिर निस्तब्धता। वसुदेव अपनी सांसों को सुन सकते हैं। पीड़ा, भय, आतंक बेबसी, और सीलन भरी उदास कोठरी में असहाय, दीन, दो मूक स्तब्ध प्राणी। निरपराध अपराधी।

भाई ने निर्दोष पवित्र भोली बहन को लम्बी जेल की सजा दी है। साथ में अपने बहनोई वसुदेव को भी जेल में बन्द कर दिया है। उनका अपराध है क्या? कंस को भय है कि देवकी का पुत्र उसकी मृत्यु का कारण बनेगा। इसीलिये वह उन्हें जेल में बन्द करके उनकी प्रत्येक सन्तान को जन्मते ही मार देता है। सात गर्भ नष्ट कर चुका आठवां प्रसव अब होने को है। निष्पाप देवकी अचेत है और पवित्र, निष्कलंक वसुदेव उदास, सभीत, असहाय।

नारायण यह लीला है तुम्हारी! हे लीला धाम! तुम लीला रूपी दर्पण में मुझ मेरा सत्य ही तो दिखा रहे हो। न जाने कितनी बार सत्य और न्याय को, वसुदेव व देवकी की भाँति जेल में बन्द किया है। क्यों? क्योंकि वह

सत्य मेरे हितों के विपरीत जो था। इसलिये इस झूठ रूपी जेल में सत्य रूपी वसुदेव व न्याय रूपा देवकी को मैं कंस बनकर बन्द करता आया हूँ। कंस ने भी तो निरपराध निष्पाप वसुदेव देवकी को अपने हित के विपरीत जान कर जेल में बन्द किया। मैं भी तो सत्य और न्याय को मेरे तथाकथित स्वजनों के हितों के विपरीत जानकर असत्य की जेल में न जाने कितनी बार फाँसी दे आया हूँ।

कंस को तो एक ही पाप था, परन्तु मेरे? गोपाल! गिन न पाऊंगा। वसुदेव! इस अधम को इसके भीतर छिपा कंस दिखाने के लिये ही तुमने लीला रची है। तुम्हारी लीला के दर्पण में आज मैं मेरे ही असंख्य स्वरूपों को देख रहा हूँ। मिथ्याभिमान और मोहांधता का पाप-हे निष्पाप! तुम्हारी लीला रूपी दर्पण में निज को देख पिघल रहा है रे मन! कंस स्वरूप को त्याग। निर्मल हो! भज! गोविन्द हरी।

समय फिसल रहा है। हथकड़ियों बेड़ियों से जकड़े हुए पवित्र वसुदेव असहाय थके हुए गर्दन घुमा कर अचेत देवकी की ओर देखते हैं। उनका मन तड़प कर चीत्कार कर उठता है "हा! देवकी मैं तुझे यही सब कुछ तो दे पाया! हर बार तू माँ बनी! जी भर के निहार भी न सकी और उसकी महीन चीख के साथ तू अचेत हुई। अपने ही भोले निरपराध शिशु के छितराये हुए माँस के लोथड़ो को मैं अपने हाथों बटोर भी तो न सका। मेरे और तुम्हारे स्वप्नों के देवता वे अबोध शिशु, निपराध! टुकड़ों में छितराते रहे। स्वप्न सजने से पहले ही चूर-चूर होते रहे। मैं असहाय, मौन, कायर की भाँति देखता रहा। काश मैं तुझे विवाह के न लाया होता। अथवा कंस के साथ समझौते के स्थान पर मृत्यु को स्वयं-वर लिया होता। हा! वसुदेव! एक असहाय निष्पाप पवित्र अबला की रक्षा भी न कर पाया। धिक्कार है ऐसे क्षत्रियत्व पर। जिसके शौर्य को शत्रुओं ने सराहा! वही महारथी आज...

तभी जेल की कोठरी आलौकिक प्रकाश से जगमग हो उठती है। वसुदेव। चौंक कर अपनी बोझिल पलकों को ऊपर उठाते हैं तो क्या देखते हैं? चतुर्भुज भगवान महाविष्णु जेल की कोठरी में प्रकट हो गये हैं। शंख, चक्र, गदा, पदम से सुशोभित उनकी मनोहारी छवि को देखकर वसुदेव असीम शान्ति एवं शक्ति का अनुभव करते हैं। वसुदेव नारायण को प्रणाम करते हैं। हथकड़ी से जकड़े हाथों को जोड़कर महाविष्णु की ओर बढ़ने का प्रयास करते हैं परन्तु पैरों की बेड़ियाँ उन्हें आगे नहीं बढ़ने देती और वे

लड़खड़ा के गिर पडते हैं। हथकड़ी और बेड़ियों से जकड़े वसुदेव दूर से ही महाविष्णु को प्रणाम हैं। उनके नेत्रों से अश्रु धारा अविरल आवेग से प्रवाहित हो उठती है। स्तुति भी ठीक से नहीं कर पाते हैं। जैसे अपने स्वजन को देखकर, लम्बे समय प्रताड़ित किया जाता बालक फफक कर रो उठता है। आज वही दशा पवित्र वसुदेव की भी है। महाविष्णु वसुदेव को सांत्वना देते हुए कहते हैं, 'वसुदेव तुम्हारी पीड़ाओं को समाप्त करने हेतु, पापी कंस के पाप के भार से धरा को मुक्त करने के लिये, धर्म एवं सत्य की पुर्नस्थापना के लिये मैं शीघ्र ही प्रकट होने वाला हूँ। जब मैं देवकी के गर्भ से नवजात शिशु के रूप में प्रकट हो जाऊँ तब तुम मुझे कंस के आने के पूर्व ही एक टोकरी में रखकर और टोकरी को सिर पर रख कर नन्द बाबा के यहां छोड़ आना तथा वहां से योग माया को ले आना।'

वसुदेव ने कहा- जो आज्ञा'

महाविष्णु अन्तर्ध्यान हो गये। तभी देवकी को प्रसव हुआ और नवजात शिशु के रूप में नारायण प्रकट हो गये। देवकी अचेत है। वसुदेव कर्तव्य बोध से व्यथित हैं। वे कुछ समझ ही नहीं पाते कि अब क्या करें। महाविष्णु के आदेश का पालन कैसे करें? हाथों में हथकड़ियाँ हैं। पैर बेड़ियों से जकड़े हैं। जिनकी जंजीरें मजबूती से जेल की दीवारों से जुड़ी हैं। द्वार पर पहरेदार हैं। मोटे-मोटे ताले दरवाजों पर लगे हैं। वसुदेव हताश हैं। भला बाल कन्हैया को गोकुल कैसे ले जाये?

वे व्यथित हैं। मन ही मन प्रार्थना भी करते हैं। "हे! नारायण!! यह आपने क्या किया। हे! नाथ!! मैं आपको कैसे नन्द गाँव ले जाऊँ। पहले मेरी हथकड़ियाँ व बेड़ियाँ तो खोली होतीं। नारायण द्वार भी बन्द है। पहरेदार भी सजग खड़े हैं। अभागा वसुदेव कैसे ले जाये आपको! नारायण! यह कैसी परीक्षा ले रहे हो ?

निष्पाप वसुदेव के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित है। बाहर घने मेघ भी मूसलाधार बरस रहे हैं और जेल की कोठरी के भीतर घनी भौहों के नीचे बन्द, पलकों में दो नेत्रों से गंगा यमुना सी अश्रुधारायें अविरल प्रवाहित हैं। बाहर भी भयानक तूफान है और वसुदेव का स्नायुमण्डल भी भयानक तूफान के प्रचण्ड थपेड़ों में दहल रहा है। अब क्या हो? वसुदेव तू कैसे ले जाएगा नवजात शिशु को नन्द गाँव? नारायण यह कैसी लीला है तुम्हारी ?

जेल की कोठरी में बंधा वसुदेव सोच रहा है। संसार की मोह रूपी

कोठरी में लिप्सा-वासना की हथकड़ियों से, मोह, अहं, अज्ञान की बेड़ियों से जकड़ा यह जीव सोच रहा है। काम, क्रोध, लोभ के पहरेदार खड़े हैं। स्वामित्व की संकीर्णता के ताले जड़े हैं। कैसे चलें प्रभु की राह। 'वसुदेव! हे निष्पाप तुम् इस लीला दर्पण में मुझे मेरा मोह अज्ञान ही तो दिखा रहे हो। रोम-रोम में कंस ने बाँध रखा है मुझको! तभी तो गोपाल! तुम्हारी राह एक क्षण एक कदम भी तो नहीं चल पाया हूँ। पहले इन लिप्साओं-इच्छाओं की पूर्ति हो। तथा कथित स्वजनों का शादी ब्याह हो। फलाँ-फलाँ कार्य पूर्ण हो तो निवृत होकर प्रभु का चिन्तन करूं।

इसी में तो यह जीव बन्धता चला गया। वसुदेव! यही लीला ही तो दिखा रहे हो तुम! मुझको मेरे अज्ञान से साक्षात्कार करवा कर हरि प्राप्ति के दिव्य मार्ग में समाधान दिखाने के लिए ही तो आज कंस की कोठरी में दुःख से। पिघल रहे हो तुम! मैं भी तो वासनाओं की कोठरी में बन्धा गोपाल! तुम्हारे लिए पिघल रहा हूँ। मेरा रूप दिखाया तुमने! अब समाधान भी दिखा दो। हे महान! रोम-रोम से तुम्हें शत-शत प्रणाम करता हूँ। मेरे दिव्य मार्ग दर्शक बना। मुझे गोपाल से मिलने की राह दिखा दो। जेल से छूटने का मन्त्र बता दो।।

वसुदेव ने सोचा कि दुःखी होने से कुछ न होगा नारायण की आज्ञा का अनुसरण कर। यही उचित है। तू ईश्वर द्वारा बताए आदेश का पालन कर। फल देना उनके अधिकार में है। उन्होंने कहा था कि मुझे टोकरी में रख लेना और टोकरी को सिर पर रख लेना। चलो पहले इतना ही करूँ। ऐसा सोच कर पवित्र वसुदेव ने बाल कन्हैया को हथकड़ी लगे हाथों से उठा कर टोकरी में रख लिया। फिर टोकरी को उठाकर सिर पर रखा। फिर मालूम है। क्या हुआ ???

हथकड़ियाँ व बेड़ियाँ स्वतः खुल गई। पहरेदार सो गए। जेल के द्वार पर जड़े ताले खुलकर नीचे गिर पड़े और फाटक अपने आप खुलते चले गए। विस्मय और आनन्द से भरे वसुदेव अपने नन्हें वासुदेव को सिर पर रखे बाहर चल दिये। संसार सो रहा था। वसुदेव जागृत गोकुल की ओर बढ़े जा रहे थे। जब भी प्रभु प्रकट होते हैं विषयी सो जाते हैं। अनन्य भक्त जागते हैं। वे ही उनका दर्शन पाते हैं। तथा ईश्वरीय आज्ञाओं का पालन करके पुन्य को प्राप्त होते हैं। विषयी, कथा में भी सोते हैं। शोर करते हैं। भक्त एकाग्र ध्यान से कथा अमृत का श्रवण करते हैं। कुछ देखा तूने? कुछ

समझा? क्या?

जब साक्षात नारायण प्रकट हुए थे तब भी वसुदेव को हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ नहीं खुली! परन्तु जब नन्हें गोपाल को सिर पे रखा तो। हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ खुल गई! पहरेदार सो गए। ताले खुल गए। यही है समाधान। देख लीला दर्पण में! इतना ही तो तू न कर सका। जब वसुदेव जैसे निष्पाप की हथकड़ी साक्षात् महाविष्णु के दर्शन से नहीं खुली तो तेरी हथकड़ियाँ मन्दिर में मात्र दर्शन और फूल चढ़ावन से कैसे खुल जाती? सोच रे! भोले भक्त विचार कर!

जब बाल कन्हैया को उठाकर सिर पे रखा तो हथकड़ियां और बेड़ियां खुल गई। सिर रूपी टोकरी में कृष्ण रूपी विचार को विराज लें। हथकड़ियाँ और बेड़ियों संसार की खुल जाएगी। इस सिर रूपी टोकरी में कृष्ण को स्थान कहाँ है? इसमे भरा है सारे संसार का मोह, छिद्रान्वेषण, क्रोध, लोभ, ईर्ष्य-द्वेष, घृणा, काम, मेरा-तेरा, अपना पराया! आह! सारे संसार की गन्दगी का कूड़ादान तो मेरा मस्तिष्क बना है। इसीलिए तो गोपाल तुझसे मिलन न हुआ। मस्तिष्क रूपी टोकरी में बाल कन्हैया को रखना था और बसाए था संसार के कीचड़ को। कैसे खुलती यह हथकड़ियां? इसीलिए तो मोहान्धता रूपी कंस मेरी प्रभु भक्ति रूपी विचार को हर बार नव जात अवस्था में मारकर मुझे संसार दल-दल में खींच ले गया। मैं असहाय फिर जेल की कोठरी में बन्धा था।

हे नाथ! यही तो तुम्हारी लीला का रहस्य है। लीला के दर्पण में जीव को उसका सही रूप स्वरूप दिखाकर उसका अज्ञान मिटाकर, उसे समाधान का सहज सूत्र बताकर, उद्धार करने हेतु ही तो लीलाधाम! तुम हर युग के अन्तराल में प्रकट होते हो! हे दयानिधान! हे दीनबन्धु!! पतित पावन इस पतित के उद्धार हेतु ही तो लीला की तुमने! फिर भी न जागूं! तुम्हारी राह न चलूं, तो धिक्कार है मुझको! जो आज न जागा-वह कभी न जागा! रे मन! भज प्यारे गोपाल! कृष्ण को मन की टोकरी में बिठा ले! हत्थकड़ियाँ-बेड़ियाँ सब खुल जावेगी! संसार सागर से तर जायेगा! गोविन्द हरि!

विस्मय आनन्द और प्रभु की सेवा के भाव से वसुदेव का रोम-रोम पुलकित है। मन में अल्हड़ किशोर की तरंग है। स्फूर्ति, शक्ति और उत्साह उनके रोम-रोम से प्रस्फुटित हो रहा है। उन्हें लगता है वे दौड़ कर गोकुल

पहुँच जायेगें। लम्बी जेल की थकान! टूटन सब कुछ समाप्त है। वसुदेव जैसे पुनः किशोर अवस्था को प्राप्त हो गए हैं। बाल कन्हैया की सुन्दर छवि को मन में बसाए, नेत्रों में समाए, रोम-रोम में रसाय, टोकरी को सिर पे रखे उन्हीं का स्मरण करते, भयमुक्त वसुदेव चल दिये! हर ओर आनन्द ही आनन्द है। वसुदेव का सौभाग्य जागा है। परम अलौकिक, दिव्य आनन्द, जिसकी एक बूंद को सन्यासी, ऋषि भक्त तरसते हैं। वसुदेव आज आनन्द के सागर में आनन्दित किलोल करते हैं। उन्हें देवकी की चिन्ता नही! पहरेदारों के जागने का भय नहीं है। चिन्ता और भय की चर्चा ही व्यर्थ है। वसुदेव ने कृष्ण रूपी विचार को सिर की टोकरी में रख लिया है। अब संसार की सुध ही कहाँ है?

जिसने हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ काटी, जिसका संसार है यह, जिसने वसुदेव व देवकी को बनाया, उन्हीं की सेवा में डूबे वसुदेव को देवकी अथवा संसार की चिन्ता कहाँ? मैं ईश्वर द्वारा दिये कर्म को, भक्ति श्रद्धा, सावधानी और ईमानदारी से उन्हीं का हो कर, उन्हीं के निमित्त, ऐसा मानकर करूं! फल वे जाने! यही तो वसुदेव लीला द्वारा दिखा रहे हैं। चल रे जीव! इस अमृतमय मन्त्र को जीवन में धारण कर! जन्माष्टमी का मन्त्र ले! बाल कन्हैया को विचारों में जन्म दे! सिर रूपी टोकरी में (संसार रूपी गन्दगी से मुक्त और पवित्र करके बाल कन्हैया को धारण कर और वसुदेव की भाँति मस्त होकर उद्देश्य और कर्तव्य को धारण कर! फल की चिन्ता एवं सुधि से मुक्त होकर आनन्द के सागर में झूम-झूम कर नहा! वसुदेव की लीला रूपी अमृत से जीवन के हर क्षण को सींच! आज जन्माष्टमी है। देह रूपी देवालय को सजाकर कृष्ण को प्रकट कर! फिर मून्द के आँख झाँकी का आनन्द ले।

वसुदेव आनन्द मग्न गोकुल को जा रहे हैं। भीषण तूफान और वर्षा उन्हें भयभीत नहीं कर पाते हैं। पानी की तेज धारें उन्हें आनन्द दे रही हैं। उन्हें लगता है प्रभु कृपा का अमृत उन्हें सींच रहा है। भयंकर तूफान की तेज दहाड़ती आँन्धियाँ, मन्द-सुगन्धित समीर सी उन्हें लगती हैं। अब कोई भी भौतिक तूफान विषय उस जीव को दुखी न कर पायेगा। जिसने टोकरी में गोपाल बसा लिए हैं! जो संसार के तूफानों में भयभीत है, उसने गोपाल को टोकरी में नहीं बसाया है। वह भक्त और भक्ति के मर्म को नहीं जानता है। उसने लीला रस का पान अभी नहीं किया है।

लीला दर्पण में निज को नहीं देख पाया है। भक्त वही है जो कृष्ण रूपी विचार से कभी विभक्त न हो। भक्त नित्य सुखी है। नित्य भयमुक्त है!

चित्यानन्द को प्राप्त है। संसारी सदा दुखी, भयभीत, अभाव, और कष्ट को प्राप्त है। यही संसारी और भक्त का भेद है। स्वयं देखो कि तुम भक्त हो अथवा संसारी। लीला दर्पण में अपने स्वरूप को पहचानों। गोविन्द हरि!

यमुना में बाढ़ भयंकर है। क्या वह वसुदेव की परीक्षा लेगी? कदापि नहीं! यमुना जानती है जो एकीभाव में कृष्ण में स्थित है उसकी परीक्षा हो ही नहीं सकती। वह तो परीक्षक, और परिस्थिति में भी कृष्ण को ही देखेगा। उसकी परीक्षा लेना असंभव है यमुना उसकी टोकरी में विराज रहे पावन कृष्ण रूपी नवजात विचार के पवित्र चरणों का स्पर्श सुख चाहती है। परीक्षक और परिस्थितियाँ भी सच्चे भक्त की परीक्षा न लेकर उसके चरणों में नत मस्तक होती हैं। तभी तो प्रभु ने कहा कि भक्त भगवान से भी बड़ा है तथा भावना भक्त और भगवान दोनों की माँ है। भावना बनाओं। प्रभु रूपी कृष्ण को इस देह रूपी देवालय में भावना के गर्भ से प्रकट कर प्रतिष्ठित करो! जन्माष्टमी मनाओ।

वसुदेव गोकुल आये हैं। यशोदा ने योग माया को जन्म दिया है। सारा गोकुल सो रहा है। किसी को भी कुछ भान नहीं है। जेल में प्रभु प्रकट हुये तो विषयी पहरेदार सो गये। गोकुल में योग माया प्रकट हुई तो सारे पवित्र भक्त सो गये। जहाँ प्रभु प्रकट होते हैं विषयी संसार सो जाता है। भक्त जागते हैं। जहाँ माया प्रकट होती है वहाँ भक्त सो जाते हैं विषयी संसार जागता है।

गोकुल के पशु पक्षी मनुष्य सब भक्त हैं इसलिये सो रहे हैं। वसुदेव भी सो जाते परन्तु उनके सिर पर बाल कन्हैया हैं इसलिये सो नहीं पाते हैं। वसुदेव बाल कन्हैया को यशोदा पास लिटा देते हैं और योग माया को सिर पर रख कर तत्क्षण वहाँ से चल देते हैं। योग माया के सिर पर आते ही वसुदेव को संसार सुधि होती है,देवकी की चिन्ता सताने लगती हैं। कंस का भय सताने लगता हैं। वे शीघ्र चल देते हैं। नन्द बाबा से मिलने की सुधि भी मिट जाती हैं। पहले बाल कन्हैया सिर पर थे तो आनन्द सागर में मस्त थे। इसलिए सो नहीं पाये। अब योग माया सिर पर हैं तो संसार चिन्ता से व्यथित हैं इसलिये सोना तो दूर रुकना भी असम्भव है। वे भागे जा रहें हैं। हे लीलाधाम। प्रणाम!!

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी!
यस्यां जाग्रति भूतानी सा निशा पश्यतो मुनेः।

बाल कन्हैया के यशोदा के बगल में लेटते ही नन्द बाबा और यशोदा सुन्दर, मधुर-अलौकिक स्वप्न दर्शन के अमृतमय आनन्द को प्राप्त होकर जागृत अवस्था को प्राप्त होते हैं। आनन्द का सागर लहराने लगता है। बाल कन्हैया अपने प्यारे भक्त समुदाय को जगाने से पूर्व स्वप्न में दर्शन का परम आन्नद देकर उन्हें जागृत दर्शन हेतु प्रेरित करते हैं। भक्त वही है जिसे जागृत और स्वप्नावस्था दोनों में ही प्रभु दर्शन की प्राप्ति हो। आनन्द ही आनन्द है। पेड़ पौधों पर हरित क्रान्ति है। फल फूलों से डालियाँ लदने लगी हैं। पक्षियों के आनन्द कलरव से वातावरण अति मधुर अलौकिक हो उठा है। गन्धर्व और किन्नरों को भी लजा दे, ऐसा मधुर कलरव पक्षी करने लगे है। गौओं और बछड़ों ने खूँटे उखाड़ दिये हैं। रस्सियाँ टूट गयी हैं। सब मस्त होकर नाचने लगे हैं। गौओं की बात कौन करे कुंवारी बछियों के स्तन से दुग्ध धारायें प्रवाहित हो रही है। जहाँ कुंवारी बछिया भी अपने स्तन से दूध गिरावे वहाँ प्रभु का वास जानो। गोप और गोपियाँ यशोदा से मिलने दौड़ी जा रही हैं। किसी ने स्वप्न में ही उन्हें दर्शन देकर कहा है कि मैं यशोदा के यहाँ आ गया हूँ। वे दौड़े जा रहे हैं। नन्द हैरान हैं। इनको बताया किसने कि मेरे घर बाल कन्हैया प्रकट हुये हैं? मैने तो अभी किसी को सूचना भी नहीं दी है! इन सबको पता कैसे चल गया।

दूसरी ओर वसुदेव जी शीघ्रता से भागते हुये कंस की जेल में प्रवेश पाते है। पहरेदार अभी सो रहे हैं। जैसे ही वे भीतर आते हैं द्वार स्वतः बन्द हो जाते हैं। ताले भी अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त होते हैं। हथकड़ियाँ और बेड़िया दौड़कर उनके हाथों और पैरों से लिपट जाती हैं। जकड़ जाती हैं। वसुदेव पुनः जेल में कैद हो जाते हैं। माया पहरेदारों को स्वप्न में उपहार का भौतिक स्वप्न देकर उठाती है। माया आयी विषयात्मक जगत जाग उठा। थके हुये वसुदेव दीवार से पीठ लगाकर निद्रा निमग्न हो जाते हैं। माया आयी! भक्त उन्नीदे हुये। पापी और विषयी जाग उठे। पहरेदार दौड़े। कंस को सूचना दी। देवकी का आठवां प्रसव हो गया है। मोहान्ध विषयी हरिद्रोही कंस हड़बड़ा कर उठ बैठा। जेल की ओर दौड़ा। अपने काल को समाप्त करने के लिए।

रे मन झांक इस लीला दर्पण में! कृष्ण रूपी विचार जब बुद्धि रूपी

टोकरी में स्थित हुआ तो संसार रूपी जेल का अस्तित्व समाप्त प्राय हो गया। विषय वासना अज्ञान इत्यादि की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ खुली द्वार खुल गये। वसुदेव स्वतंत्र होकर आनन्द के सागर में झूमने लगा। परन्तु योग माया जब सिर पर आयी तो पुनः जेल में बन्दी बना हुआ था। जिस क्षण कृष्ण रूप विचार मन से उतर गया और संसार रूपी योग माया आयी, तू फिर बन्दी है। विषय वासना मोह आसक्ति और मिथ्याभिमान की जेल में। वसुदेव के सिर पर जब कृष्ण थे तो आनन्द था। जब कृष्ण हटे और योगमाया आयी तो चिन्ता थी, भय था और थकान से टूट रहा था। कृष्ण हमें दुःख पीड़ा और भय से छुड़ाकर अलौकिक आनन्द देते हैं और सांसारिक मायायें भय पीड़ा, दुःख, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, रोग, घुटन और बन्धन! रे पतित! फिर भी संसार माया की ओर भाग रहा है। अपने हित में भी जब तू इतना अन्धा है तो जिनके लिए भाग रहा है उनका क्या हित करेगा तू! जिन्दगी के नाम पर मौत, सुख के नाम पर दुःख, आनन्द के नाम पर पीड़ा, स्वतंत्रता के नाम पर घुटन भरी गुलामी ही तो अपने और अपने स्वजनों के लिए बटोर रहा है। जिसने अपने हित को ही नहीं जाना वह मूर्ख अपने स्वजनों के हित की कल्पना का ढोल बान्धे उनका भी सर्वनाश ही तो ढूढ़ रहा है। शीश रूपी टोकरी में सदा-सदा के लिए कृष्ण रूपी विचार को बिठा ले! गोविन्द हरि!

समय फिसल रहा है। हम सब जन्माष्टमी के पावन पर्व पर श्री सनातन आश्रम में एकत्र हुये हैं। गोपाल की सम्पूर्ण लीला का चिन्तन करने के लिये एक जन्म तो क्या अनेक जन्म भी थोड़े हैं। इसीलिये तो भक्त बारम्बार लीला आनन्द पान की कामना करते हैं। समय से पूर्व ही कथा का समापन करना है। इसलिये जिसका अति विस्तार भी संक्षेप ही है क्योंकि उसके अतिरिक्त इस संसार में कुछ है ही नहीं। उस संक्षेप को भी अति संक्षेप में आप सबके सम्मुख रखता हूँ। ध्यान, भावना एवं भक्ति पूर्वक सावधान होकर ग्रहण करें। श्री भगवान ने गीता में कहा है कि कोई भाग्यवान ही उनकी कथा का श्रवण कर सकता है। ऐसे सुनने वालों में भी कुछ ही ऐसे भाग्यवान होते हैं जो उस कथा में मर्म रूपी अमृत को पाकर आनन्दित होते हैं तथा ऐसे मर्मज्ञों में थोड़े ही वे लोग हैं जो उस अमृतमय ज्ञान को जीवन में उतारकर अर्थात आचरण करके ईश्वर को प्राप्त हों! ईश्वर करे! हम सब ऐसे महा सौभाग्य को प्राप्त हों। हम सब सावधान होकर वसुदेव की कथा का श्रवण करें। आचरण करें

और सदा-सदा के लिये कृष्णमय हो जावें। गोविन्द हरि!

द्वापर युग समाप्ति की ओर भाग रहा था। राजा उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपने पाप और अत्याचार से धरती को त्रस्त कर दिया था। अपने पिता उग्रसेन को उसने जेल में डाल दिया था। पाप, अनाचार, अत्याचार लूट, सताना यही उसका काम था। बहन का विवाह उसने वसुदेव के साथ किया। परन्तु जब उसे पता चला कि वसुदेव देवकी की आठवीं सन्तान उसकी मृत्यु का कारण होगी तो नारद द्वारा उकसाये जाने पर उसने वसुदेव देवकी को जेल में डाल दिया और उनके प्रत्येक प्रसव को नष्ट करने लगा। सातवें गर्भ के रूप में बलराम को प्रकट होना था वे प्रभु की लीला द्वारा रोहिणी जो कि वसुदेव की दूसरी पत्नी थी तथा जो उनके मित्र नन्द की पत्नी यशोदा के साथ रह रही थीं उन्हीं के पास पहुंचा दिये गये और बलराम के स्थान पर एक नवजात मृत शिशु के शव को कंस को दिखा दिया गया कि देवकी की सातवां सन्तान मृत हुयी है उसके उपरान्त आठवें गर्भ की लीला का हम अभी चिन्तन कर आये हैं।

कंस ने सुना देवकी का आठवाँ गर्भ प्रकट हो गया है वह दौड़कर जेल में आया। देवकी की बगल से (योगमाया जो कि कन्या रूप में प्रकट हुयी थी) उसकी सन्तान को निर्ममता पूर्वक उठा लिया। भय से देवकी के और घृणा से वसुदेव के नेत्र मुन्द गये। कंस ने देखा कि आंठवी सन्तान पुत्र न होकर कन्या है तो वह ठठाकर हँसा! भला कन्या मुझे क्या मारेगी? उसके दम्भपूर्ण ठहाकों से जेल की दीवारें दहल उठी! उसने उस कन्या को शिला पर पटक कर चकनाचूर करना चाहा। परन्तु योगमाया उसके हाथ से फिसल गयी। योगमाया ने कंस के सिर पर कसके लात मारी और गगन में जाकर स्थिर हो गई। उसने पुकार कर कहा, "रे पापी! तेरा काल प्रकट हो गया है! आज से ग्यारहवें वर्ष तू उसके द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगा।' यह कहकर योगमाया अर्न्तध्यान हो गयी। कंस ठगा सा, हताश, हाथ मलता रह गया! गोपाल तो गोकुल में अपने प्यारे भक्त समुदाय को अलौकिक आनन्द रूपी रस से सींच। रहे थे।

देखा तुमने! कंस ने योग माया से लात खाई। कंस योगमाया का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाया। फिर भी हम कंस की भाँति योगमाया के झांसे में जाकर अपने जीवन को प्रतिक्षण नष्ट करते हैं। जो अपने तथा अपने स्वजनों के तथा कथित हित में अन्धा होकर सत्य रूपी वसुदेव और न्याय

रूपी देवकी को झूठ की जेल में बन्द करके, सत्य और न्याय के पुत्र निर्णय की हत्या करने की कल्पना करता है वही योगमाया द्वारा निरन्तर लातें खाता हुआ, जगत में अपयश और धिक्कार का भागी, बनता अपने ही आत्मा रूपी कृष्ण द्वारा, वह आत्मद्रोही कंस की भाँति मारा जाता है।

माया तुम्हें सदा लात ही मारती हैं। मकान की मांया में फंसे तो लाते खायी। आज कौन सुखी है? हर गृहस्थ रो रहा है। क्यों? क्योंकि माया उसे संसार के प्रत्येक स्तर पर लातें लगा रही है। जहाँ सुख ढूंढा वही दुःख मिला। माया लातें मार तुमको जगा रही है कि मूर्खों सुख यहां नहीं है। सुख वहां है जिसकी मैं चेली हूँ। विषय, वासनाओं में पड़े कंस को मैं सदा लातों से पीटती हूं। परन्तु नन्दगाँव में बसे सम्पूर्ण जीव मात्र को मैं असीम आनन्द देती हूं। मुझसे वही बचता है जो मेरे प्रभू को अपने मलिक रूपी टोकरी में सदा सदा के लिये रख लेता है। जिसके मस्तिष्क में मेरे प्रभु आसीन होते हैं उसे मैं पुत्रवत प्यार स्नेह एवं आनन्द प्रदान करती हूँ। जिसे मेरे प्रभु प्यार करते हैं उसकी सुख सुविधा की देखभाल में सजग होकर प्रतिक्षण करती हूँ। जो मेरे प्राण प्रिय प्रभु के विपरीत कंस बनता है उसकी सेवा में लातों से करती हूँ। हे लतखोरी लाल! भज गोपाल!

प्रभु जेल में वसुदेव और देवकी के दाम्पत्य को वरद करने हेतु प्रकट होते हैं। परन्तु उनकी लीला का आनन्द नन्द और यशोदा उठाते हैं। इसका क्या रहस्य है?

वसुदेव कहते हैं सूर्य को! जिसका दूसरा अर्थ है आत्मा। देवकी कहते हैं। ब्रम्ह ज्वालाओं को। आत्मा वसुदेव और आत्म ज्वाला अर्थात ब्रम्हाग्नि देवकी। विषयासक्त मन ही तो कंस है। जब मन विषयासक्त होकर कंस बना बाहर भटकने लगा तो यह शरीर आत्मा रूपी वसुदेव और आत्मज्वालाँ देवकी के लिये जेल ही तो बन बैठी।

अब विचार करो! क्या तुम थाली भर भोजन से अंगुली का एक टुकड़ा बना सकते हो? नही! तो फिर तुमने बालक कब बनाया? आत्म ज्वाला देवकी और आत्मा रूपी वसुदेव आज भी घट-घट वासी होकर प्रत्येक शरीर में बालक को उत्पन्न करते हैं। जब बालक उत्पन्न हो जाता है तभी तो यह जीव नन्द और यशोदा की भाँति उसका लालन-पालन करते हैं। नन्द उसी को कहेंगे जो सबको आनन्द दे। आये नन्द तो हो आनन्द (आ+नन्द)। यशोदा अर्थात यशदायनी। जो दूसरों को यश दे तथा जो शुभ आचरण तथा

ज्ञान द्वारा बालक के जीवन को यशस्वी बनावें-वही तो यशोदा होगी।

लीला-दर्पण में रूप मेरा मुझे ही दिखा रहे हो गोपाल! इस मिथ्याभिमानी को सत्य का दर्शन कराने हेतु ही तो हे देव! तुमने रहस्यलीलाओं की सृष्टि की। जब बोरी भर राख से एक समय भोजन (पेड़ों की शरण हुये बिना) न बन पाया। पेड़-पौधों के गर्भ में यज्ञों के द्वारा तुम ही बूढ़े तन की राख को सुन्दर फलों आदि में तथा उन फलों को नाना जीवधारियों की देह में यज्ञों द्वारा उनकी सन्तानों में प्रकट करते हो। फिर भी यह अज्ञानी मिथ्याभिमानी जीव मोदान्ध! मोदान्ध! जाने क्यों 'मैं पेट भरता हूँ। यह मेरा बेटा है! यह मेरा है! वह पराया है!'' ऐसी असत्य और अन्धता से नहीं छूट पाता है। इसी पाप में भटका, कंस का सामीप्य और सानिध्य लेकर कंस बना, अपने जीवन को नष्ट कर देता है! छूट जाता है सत्य से! जो सत्य से छूटा वह कैसे पाये तुमको! हे यज्ञेश्वर! हे घट-घट वासी यूँ तुम हर ओर हर क्षण लीला करते, वसुदेव और देवकी के गर्भ से, इस देह रूपी जेल में प्रकट हो रहे हो! मन कंस कैसे पहचाने तुमको! धन्य होंगे वही दम्पत्ति जो नन्द और यशोदा बन सचराचर में तुम्हारी लीलाओं के परम आनन्द को प्राप्त होंगे। तुम्हारी लीलाओं को वेद भी गाकर परम धन्य होते हैं।

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्त्रिणम!।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या।।

(ऋग्वेद 1/5/9)

सीपी में बन्द मोती की भाँति हे प्राण! मैं देखता हूँ तुमको! जैसे सीपी में जगमगाता हुआ मोती छिपा रहता है, जैसे बन्द पलकों में प्यारी पुतली छिपी रहती है उसी प्रकार सचराचर में, पेड़-पौधों में, पशु-पक्षियों में, मनुष्यों में, सम्पूर्ण देहधारियों में, जगमगाते सुन्दर मोती की भाँति; आत्मा होकर तू बिराज रहा है। हे प्राण! हे जगमगाते मोती। मैं देखता हूँ तुझे अब प्रत्येक सीपी (देह) में। क्या करते हो तुम? यज्ञ करते हो! आत्म ज्वालाओं में प्रतिक्षण जिससे क्षणभंगुर संसार वारम्बार जड़त्व को त्यागता जीवन्त धाराओं को प्राप्त होता है। भस्मी पुनः फल और फल पुनः नाना जीवधारियों में जीवन्त हो उठते हैं। यही वसुदेव और देवकी की लीला है। हर ओर! सर्वत्र! प्रति क्षण! गोविन्द हरि!

यही सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य है। प्यारे भक्त गण! जिन्हें आप रास

लीला कहते है। उनका पूर्व का नाम था रहस्य-लीला। कालान्तर में रहस्य का। 'अपभ्रशं रहास बना! फिर 'रहास' लीला से रासलीला और रसलीला हो गया। जीवन के विभिन्न रहस्यमय पहलुओं को नाटकीय ढंग से दर्शाने की। लीला को रहस्यलीला कहते थे। भगवान वेदव्यास की लीलाओं में वेद के रहस्यों को बहुत ही सरल और मधुर ढंग से दर्शाया गया है। लीला विस्तार आज सम्भव न होगा। इसलिए अभी आप प्रभु लीलाओं में कुछ ही लीलाओं को अति संक्षेप में जाने। पुनः समय-समय पर लीलाओं का विस्तार कथाओं में करेंगे। घड़ी की सुइयाँ भाग रही हैं। अभी नन्हें कन्हैया का प्राकट्य होगा! आनन्द होगा! गोविन्द हरि!

जब कंस ने सुना कि उसका काल गोकुल में सुख से पल रहा है तो बहुत उदास हो गया। कंस की दो पत्नियाँ हैं! 'अस्ति' और 'प्राप्ति'। वे अपने पति की सेवा में रत हैं। दोनो सगी बहनें हैं और जरासन्ध की बेटियाँ हैं। श्वसुर जरासन्ध की शक्ति से कंस से सब राजा थर्राते हैं। कंस का कोई सामना करने का साहस नहीं करता, है। आज वही कंस उदास और भयभीत है। उसकी हिम्मत नही है कि स्वयं सेना लेकर गोकुल चला जावे और अपने काल बाल कृष्ण का सामना कर सके। 'अस्ति और 'प्राप्ति' अपने पति को ढाढस बंधाती है। कृष्ण तुम्हारा कुछ नही बिगाड़ पावेगा।

मोहान्धता और स्वामित्व की संकीर्णता ही तो कंस है। जिसने अपने जीवन से यह मिटा दिया उसने कंस को मार दिया। कंस को वही जीव मार पायेगा जो एकीभाव से कृष्ण को अपनी बृद्धि रूपी टोकरी में बिठा लेगा और कभी उतारेगा नहीं। 'अस्ति' का अर्थ है 'होना' और 'प्राप्ति' अर्थ है मिलना यह मेरा है। 'अस्ति'! मुझे यह और प्राप्त हो 'प्राप्ति'। जब तक जीव इन विचारों में बँधा है वह कंस का भक्त है। 'अस्ति' और 'प्राप्ति' का बन्धक है। चरण दास है। उसका भजो राधे-गोविन्द' मात्र स्वयं को दिया गया धोखा है। कंस और उसकी दोनों पत्नियाँ उसे कृष्ण द्रोही बना कर भ्रमाती है। फिर उसे जरासन्ध के सामने पेश होना पड़ता है। जरासन्ध अस्ति और प्राप्ति के पिता हैं, कंस के श्वसुर हैं। 'जरा' का अर्थ है बुढ़ापा और दूसरा अर्थ है जीर्ण होना। कमजोर होना। 'सन्ध' माने सन्धि! जरासन्ध का अर्थ हुआ बुढ़ापा जो तुम्हारी सन्धियों अर्थात शरीर के जोड़ों को तोड़ दे। पहले कंस बाँधता है। मिथ्याभिमानी बनाता है। फिर अस्ति' और 'प्राप्ति' उसे गुलाम बना कर भ्रमाती हैं। बन्दर की तरह नचा कर आनन्दित होती हैं।

जीव कंस और कंस पत्नियों का मनोरंजक खिलौना बन के रह जाता है, मेरा और मुझे मिले इसकी चिन्ता में नष्ट होने लग जाता है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अभाव, रोग भय, आतंक, संदेह विषय वासनाएँ जरासन्ध के गण बन कर उसे नष्ट करने लगते हैं। देह क्षीण। होने लगती है। देह के जोड़ टूटने लगते हैं। जिन्दगी अस्पताल बनने लगती है। मुस्कराता है जरासन्ध'! मेरी बेटियों और दामाद ने मुझे नया खिलौना दिया है, मनोरंजन हेतु! मेरा दामाद मेरा कितना ख्याल करता है और मेरी बेटियाँ कितनी अच्छी हैं। मुझे कभी भूलती नहीं। मेरे मनोरंजन के लिये नित्य नये खिलौने भेज रहे हैं। मैं अब इनकी सन्धियों को कस के तोडू। जब ये कराहेंगे। तड़पेंगे तो बहुत मजा आएगा! जरासन्ध तोड़ता सन्धियाँ तुम्हारी और तुम मनाने आए जन्माष्टमी? काश! तुम कृष्ण के हो गए होते! जरासन्ध फिर कैसे तोड़ता संधियाँ तुन्हारी? 'जरासन्ध' जब खिलौने से ऊब जाता है तो उसका एक परममित्र हैं 'कालयवन! उसी के पास टूटे खिलौने भेज देता है। कहता यह है कि "लो मित्र मैने इनकी संधिया तोड़ दी हैं। मनुष्य योनि में रहते हुए भी कुल बुलाते कीड़ों से कहीं निकृष्ट हैं, तुम्हारे आनन्द भोग हेतु इन्हे भेज रहा हूँ।'

'काल' का अर्थ है समय और 'यव' का अर्थ है 'बीज' तथा 'न' का अर्थ है नहीं! कालयवन का अर्थ हुआ-समय जो जीव की प्रत्येक उपलब्धि को बीज रहित अथति निर्बीज कर दे जीव की सभी उपलब्धि को निर्बीज करने वाला काल ही वो काल-यवन है। जरासन्ध से टूटा और चिता की लकड़ियों पर निर्बीज कर गया काल यवन! रे कृष्ण द्रोही! कभी पहचानेगा इन भंयकर शत्रुओं को जिनकी गोद में खेल रहा है आज! जिनके लिये धरती का अभिशाप बना हुआ है। हे मकान दास दीवार मल! मेरे प्रभु की राह चल! काश। तुम अपने हित को आँख खोलकर देख पाते तो गोविंद गोपाल ही गाते! मन में विषयों को नहीं प्यारे कृष्ण को रमाते! कंस उसकी पत्नियाँ, जरासन्ध तुम्हें छू भी न पाते हाथ मलते रह जाते!

हे देव! हे लीलाधाम! इस अधम पापी की रक्षा हेतु ही तो तुम प्रकट हुए और स्वयं को सबसे निरापद कर, मुझे इनसे बचने का मार्ग दिखाया! मेरे प्यार में गोपाल! तुम धरा पर अवतरित हुए और मैं पतित तुम्हे बिसरा कर कंस समुदाय में ही अपना हित ढूंढता' स्वयं को नष्ट करता फिरा। तुम फिर भी अपनी लीलाओं द्वारा मुझे रिझाते रहे सत्य का ज्ञान कराते रहे। कभी बने

विष्णु तो कभी बने राम! हर युग में मैं पतित भटका और फिर से बचाने तुम आये! हे महान! प्रणाम!!

प्रभु की लीला ही अमृत है! जीवन का सत्य है सार है। आज कंस दुःखी है! भयभीत है! उसकी पत्नियाँ भी घबड़ाई हुई हैं। यदि कंस के काल को बाल्यावस्था में ही न समाप्त किया गया तो कंस का एकछत्र साम्राज्य नष्ट हो जाएगा। कंस के मरते ही अस्ति और प्राप्ति भी वैधव्य को प्राप्त होगी। उनका भी सुख साम्राज्य नष्ट हो जावेगा। वे दुःखी पति को ढाँढस तो बन्धा रही हैं परन्तु स्वयं भी भयभीत हैं! कंस भयातुर है! गोकुल पर आक्रमण करके नवजात शिशु को मारने का साहस भी उनमें नहीं है! क्यों न छल के द्वारा बाल कन्हैया को मार दिया जावे! पूतना! हाँ पूतना राक्षसी तुरन्त कंस के सम्मुख प्रस्तुत हुई। कंस ने पूतना को बाल कन्हैया को दूध में विष देकर मारने भेजा। मायावी स्त्री ने सुन्दरी का रूप धारण कर लिया और अपने स्तन पर विष लगाकर मायाविनी पुतना गोकुल की ओर चल दी।

उधर नन्द के गाँव में आनन्द ही आनन्द है। नन्द बाबा को चौथेपन में पुत्र की प्राप्ति हुई है। महाराज दशरथ को भी चौथेपन में ही भगवान श्री राम चन्द्र पुत्र रूप में प्राप्त हुए थे। भगवान चौथेपन में ही क्यों सन्तान सुख देते हैं? मनुष्य के जीवन को वेद ने चार भागों में बाँट रखा है। बचपन से किशोरावस्था तक पहला, किशोरावस्था से युवावस्था तक दूसरा, युवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक तीसरा तथा प्रौढ़ावस्था से बुड़ापा चौथेपन है। पहलापन है ज्ञानार्जन का। तब जीव ज्ञान का साक्षात्कार करता है। कच्ची अवस्था है। ज्ञान को पढ़ा तो है परन्तु अभी आचरण द्वारा सिद्ध नहीं किया है। दूसरी अवस्था में ज्ञान को स्थूल रूप से जानने हेतु, गृहस्थ हुआ परिवार को उसी प्रकार धारण करने का रिहर्सल (पूर्वाभ्यास) कर रहा है जैसे नारायण सम्पूर्ण सचराचर को धारण करते हैं। सो अभी भी नाटक का पूर्वाभ्यास ही तो है। तीसरेपन में उसमें प्राणी मात्र को एक गृहस्थी के रूप में सेवा करने की भावना जगी। पहले एक परिवार को धारण करता था अब सचराचर को एक कुटुम्ब जानकर, प्राणी मात्र में नारायण की सेवा में लग गया, सो तीसरापन है। प्राणी मात्र में नारायण की भावना करके सेवा तो कर रहा है पर अभी भी स्पष्ट रूप से निज स्वरूप को जान नहीं पाया है। चौथेपन में वासुदेव को सचराचर में भजता, उन्हें ही अपने अर्न्तजगत में देखता, समाधिस्थ होने लगा। सम्पूर्ण ब्रम्हाण्डों में नारायण को देखता तथा सम्पूर्ण ब्रहमाण्डों को

नारायण सहित अपने भीतर देखता हुआ, जब उन्हीं में स्थित हो गया तब महाविष्णु बाल रूप धारण करके प्रकट हो गये। यह चौथापन अति दुर्लभ। जीव काल से बँधा नहीं है इस दुर्लभ चौथेपन की प्राप्ति किसी अवस्था में भी हो सकती है। इस प्रकार विचारों के चौथेपन के परमानन्द को जब जीव प्राप्त होता है तो महाविष्णु (नारायण) पुत्र बनकर उसके आँगन में लीला करते, उसके परमानन्द को सहस्त्रगुणा कर देते हैं। नन्द बाबा को भी पुत्र रूप में कन्हैया मिले हैं। शंकर भी उनके दर्शन को तरस रहे हैं। नन्द बाबा सबको प्रसन्न कर रहे हैं। प्रजाजनों को गहने, वस्त्र, अन्न, गाय सब कुछ उदार होकर दे रहे हैं। यशोदा आभूषण दोनों हाथों से लुटाये जा रही हैं। जो दूसरों को सुख दे सो 'देवता' जो दूसरों को नोचे सो पिशाच! प्रभु देवता स्वरूप मनुष्यों के यहाँ ही प्रकट होते हैं। देवता मुक्त हस्त से दूसरों को सुख बाँटते हैं। नन्द और यशोदा दान कर रहे हैं। कंस स्वभाव से पिशाच है। नन्द स्वभाव से देवता हैं। देवता स्वरूप प्रभु को देखकर आनन्द मग्न होता है। पिशाच स्वरूप मनुष्य भय, इर्ष्या, द्वेष और घृणा को प्राप्त होता है। दूसरे के सुख वैभव की प्राप्ति से यदि तुम प्रसन्न हो तो तुम देवता स्वरूप हो। दूसरों के सुख और वैभव तथा यश आदि प्राप्त होने पर यदि तुम इर्ष्या द्वेष आदि से भर रहे हो तो तुम पिशाच स्वरूप हो। सावधानी से स्वयं को पढ़ो। नन्द को आनन्द है कंस को भय और अनिद्रा।

पूतना सुन्दरी का रूप धारण किये ठुमकती हुई आनन्दित होने का नाटक करती बाल कन्हैया के पास जा पहुँची और उन्हें स्तनपान कराने लगी। किसी को भान न हुआ। बाल कन्हैया ने कस कर स्तन को पकड़ लिया और स्तन पान करने लगे। विष का उन पर असर न हुआ। बाल कन्हैया दूध के साथ उस राक्षसी के प्राण भी पीने लगे। पीड़ा से राक्षसी छटपटाने लगी। उसने स्वयं को छुड़ाने के बहुत प्रयास किये लेकिन बाल कन्हैया ने छोड़ा नही। विकराल रूप धारण करके पूतना आकाश में उड़ने लगी। बाल कन्हैया ने तब भी नहीं छोड़ा। अन्त में पूतना मर कर धरती पर आ गिरी। पीछे दौड़ती गोपियों ने उसकी छाती से बाल कन्हैया को अलग किया और गोकुल ले चलीं।

'पूत' का अर्थ है पवित्र! और 'ना' का अर्थ है नहीं। अपवित्रता तो पूतना है। मेरे लीलाधाम। लीला-दर्पण में मैं आज अपना पूतना स्वरूप देख रहा हूँ। अपवित्रता ही तो पूतना है। अपवत्रिता ही तो प्रभु भक्ति रूपी विचार को

विष देकर मुझे संसार सागर में भटका देती है। हर बार प्रभु तेरी राह चलने का संकल्प लेता हूँ हर बार तेरी मधुर छवि मेरे मानस पर प्रकट होती है। तभी विषय, भौतिकता, मोह आदि सहस्त्रों पूतनाएँ, अपने विष से तुम्हारी मनोहरी छवि को धूमिल कर मुझे संसार सागर में धकेल देती है।

पूतना जिये या कृष्ण? सोच रे मन पापी! दोनों एक साथ न रह पायेंगे। एक को मरना होगा। ईश्वरीय पवित्र सद्-विचार अथवा विषया सक्त जगत की मोहासक्ति रूपी अपवित्रता?

विचारों की अपवित्रता ही तो पूतना हैं। कंस पूतना द्वारा ही तो जीव को बांधता है। उसके देह रूपी देवालय में, कृष्ण रूपी विचार को समाप्त करने तथा पूतना रूपी अपवित्र विचार एवं आचरण को उसकी देह में प्रकट करके सदविचारों की हत्या करवा देता है। पूतना से सावधान रहना। माता पिता जब पूतनावत बालक को संस्कार देते हैं तो वे बड़े होकर उन्हें मारते हैं। यशोदा बनो।

रहस्य लीलाओं द्वारा अनपढ़ गाँव के लोग अमरत्व पा गये। पढ़े लिखे कूड़ेदान बन रहे हैं आज। पूतना के पूत (पुत्र) क्या जाने गोपाल को। हर ओर पूतना का बोलबाला है। जन्म से मृत्युपर्यन्त पूतना भक्ति में संसार खोया हुआ है। पूतना ही हमारे जीवन का मंत्र बन बैठी है। कैसा घोर कलियुग आया है।

एक समय जब शिक्षा समाज, राजनीति पर धर्म का अधिकार था तब कृष्ण की भक्ति थी। आजादी के साथ ही तुमने नारा लगाया कि धर्म राजनीति से हट जाना चाहिये। हम हट गये। तुमने हमें शिक्षा से भी अलग किया और समाज को भी हमसे अलग कर लिया तभी तो हर ओर पूतना का साम्राज्य है। धर्म हटा पूतना आयी। सूर्य हटा अन्धेरे ने अपनी चादर फैलाई। अंधेरे के राजा उल्लू और चमगादड़ ही तो होंगे। न खुद कुछ देख पायेंगे, न देखने देंगे तुमको। राजनीति के नाम पर नैतिक पतन, समाजवाद के नाम पर समाज-शोषण और चरित्र हनन, शिक्षा के नाम पर पूतनावाद का भटकाव। अब तुम अन्धेरे को ही तो रोशनी कहोगे और जुगनू को सूर्य। रात में जागोगे। दिन की चकाचौंध असह्य है इसलिये सो जाओगे। मैया पूतना की जय!

कल और आज की शिक्षा का भेद ही समझ में आ जावे तो आपको पूतना स्पष्ट हो जावेगी। अतीत युग में बालक ग्यारहवें वर्ष की आयु में

गुरुकुल में प्रवेश पाता था। इससे पूर्व उसकी शिक्षा उसके माता-पिता तथा समाज में ही प्रतिष्ठित धर्मचार्यों द्वारा होती थी। रहस्य, लीलाओं द्वारा माता-पिता तथा पुत्र अपने जीवन के मूल उद्देश्यों और कर्तव्यों का सुगम सरस बोध करते थे। स्वयं को पहचानते थे। विष और अमृत के भेद को पहचानते थे।

लीलाओं में प्रथम लीला थी मन्दिर की। मन्दिर की रहस्य लीला आज आप नहीं जानते हैं। समाज भूल गया है। मन्दिर में बालकों को - निज स्वरूप तथा निज धर्म पढ़ाने हेतु ही बालक को लेकर माता-पिता अपने कुल के आचार्य के साथ जाते थे। उस मन्दिर के दर्पण में उस का रूप दिखाते थे। बालक से कहते थे कि मन्दिर तुम्हारी तस्वीर है। जैसे तुम ध्यान में पल्थी लगाकर बैठते हो वैसे ही तो हमने प्रभु का मन्दिर बनाया है। यथा :-

पल्थी के जैसा चबूतरा; धड़ (शरीर) के जैसा गोल कमरा; सिर के जैसा मन्दिर का गुम्बद; ब्रह्मचारी बालक की जटाओं के जूड़े जैसा ही गुम्बद के ऊपर कलस; आत्मा जैसी प्रभु की मूरत और जीव रूप इस शरीर का पुजारी, तू ही तो है। जो धर्म पुजारी का मन्दिर तथा मूर्ति के प्रति है। वही धर्म तुम्हारा आत्मा रूपी कृष्ण के प्रति है तथा देह रूपी देवालय के प्रति है। जिसे पुजारी मन्दिर को गन्दे आचरण और दुराचरण में अपवित्र नहीं कर सकता उसी प्रकार तू शरीर रूपी पवित्र देवालय को गन्दे विचारों तथा गन्दे आचरण द्वारा कैसे अपवित्र कर सकता है।

जिस प्रकार पुजारी मन्दिर का मालिक नहीं है। मालिक तो प्राण प्रतिष्ठित मूर्ति है। पुजारी एक निमित्त (ट्रस्टी) ही होता है। उसी प्रकार आत्मा होकर प्रभु ही तो इस शरीर देवालय के मालिक हैं। जीव इस शरीर का इस्तेमाल तो कर सकता है परन्तु एक अंगुली अपने मन से बना तो नहीं सकता। इस शरीर में जीव होकर तुम मात्र पुजारी (निमित्त, ट्रस्टी) ही तो हो। एक निमित्त (ट्रस्टी) की भावना से शरीर का उपयोग ईमानदारी से करो। इस देवालय को विषयों में नष्ट मत करो। अपनी पूतना स्वयं बनना तो निकृष्टतम् पाप है।

जब शरीर में तुम मात्र निमित्त हो तो मकान मालिक, दुकान मालिक कहाँ से हो जाओगे? स्वयं को अन्धा मत करो। सचराचर में समाज के प्रति प्राणीमात्र के प्रति निमित्त बन कर जीना सीखो। स्वामित्व की संकीर्णताओं को त्यागो। हर ओर वसुदेव हैं। सचराचर को समर्पित होकर निमित्त भाव से

जीना सीखो! स्वामित्व की संकीर्णता में जो फंस गया उसे कंस ने पकड़ा, 'अस्ति' और 'प्राप्ति' ने नोचा, जरासंध ने उसकी सन्धियाँ तोड़ी और काल यवन निगल गया उसको। सावधान होकर मन्दिर में स्वयं को तथा अपने धर्म और कर्त्व्य को पहचानो।

जिस प्रकार पुजारी भगवान की मूर्ति को भोग लगाता है उसी प्रकार तुमने भी खाया कहाँ। आत्मा गोपाल को ही तो भोग लगाया। उन्होंने ही भोजन को यज्ञ के द्वारा शक्ति में रक्त मांसादिक में लौटाया। जो वस्तु प्रभु की मूरत पर न चढ़ाई जा सकी उसे साक्षात आत्मा वसुदेव पर कैसे चढ़ा रहे हो? शराब गांजा, भाँग, तम्बाकू, अंडा, मांस का सेवन करने वाला अभिशप्त है।

बढ़िया बर्फी खाने के पश्चात् क्या तुम सड़ा हुआ गुड़ खाओगे? जिसने गोपाल के स्वरूप का नशा किया है वह सांसारिक नशों में कदापि नहीं जावेगा। भांग को पीने वाले गोपाल रस को नहीं जानते हैं। जो मेरे प्रभु को जानता है। वह उन्हीं में खो जाता है। एक ही नशा करता है। उनकी मनोहारी छवि का।

क्या पुजारी मूर्ति के गहने चुरा कर बेच सकता है? मान लो पुजारी ने मूर्ति का मुकुट चुरा कर बेच दिया, विषय भोग के लिये। क्या तुम इसे अच्छा कहोगे? क्या यह पाप न होगा? उसी प्रकार तुम्हारी इन्द्रियाँ आत्मा गोविन्द का आभूषण ही तो हैं। क्या प्यारे कन्हैया के गहने बेच दोगे? इन्द्रियों का आत्म यज्ञार्थ प्रयोग करो!

भगवान श्री राम ने शबरी के जूठे बेर खाये थे। घट-घट वासी आत्मा होकर आज भी तो प्रत्येक जीव की जूठन को शक्ति; रक्त मांसादिक में बदल रहे हैं। क्या उन्होने प्राणी मात्र से भेद किया? सभी को समान भाव से प्यार करने वाले आत्मा के धर्म को जो माने वही तो धर्मात्मा (धर्मआत्मा) होगा। प्राणी मात्र से अभेद प्यार करो। भेदभाव करने वाले प्रभु द्रोही हैं।

जिसने आत्मा होकर राख और मिट्टी को सुन्दर पवित्र फलों का स्वरूप प्रदान किया; जो घट-घट वासी होकर सम्पूर्ण सचराचर को प्रकट करते हैं। जो आत्मा होकर आज भी निष्काम नौकर बने हर एक जीव को साँस, धड़कन शक्ति, भोजन और सामर्थ्य प्रदान कर रहे हैं। ऐसे घट-घट वासी गोपाल का ध्यान करो। फिर स्वयं से पूछो कि जब परमेश्वर स्वयं सचराचर के निष्काम सेवक बने हैं। निष्काम सेवाओं द्वारा तुम्हें यह शरीर दिया तथा

आत्मा होकर निरन्तर सेवारत है। क्या उन्होने कोई फीस ली? निष्काम सेवाओं द्वारा प्रकृति और पुरुष बना रहे तुमको! सजा संवार रहे तुमको! खिला पिला रहे तुमको! तो बताओ यह शरीर किसलिये दिया तुमको? प्राणी मात्र की सेवा के लिये अथवा एक परिवार के संकीर्ण हितों के लिये समाज को नोचने लिये। सताने के लिये। विचार करो!

प्रवचन की यमुना प्रवाहित हो रही थी। श्रोतागण ध्यान से सुन रहे थे। तभी एक सेठ जी बीच उठ खड़े हुये। प्रवचन रुक गया। सेठ ने कहा "स्वामी जी! जो कुछ आप कहते हैं सो सम्भव नहीं है। आज के युग में यह सब जमता नहीं है। मैं रोज दस माला प्रभु की फेरता हूँ। उसकी पूजा और ध्यान करता हूँ। क्या इतना उपयुक्त नहीं है।''

इस सन्यासी ने उत्तर दिया, 'सेठ जी कोई तुम्हारे नाम की सौ माला फेरे! तुम्हारी स्तुति गावे। तुम्हारे पौत्र को अनाधिकार मारे लूटे! तुम्हारी बहू के कपड़े नोचे। उसके साथ मुंह काला करना चाहे! तो क्या तुम उसे वरदान दोगे? वह तुम्हारे नाम की माला जो फेर रहा है!'।

सेठ :-''महाराज! मैं उसे जेल भिजवा दूँगा। कोई मेरी बहू की तरफ आँख उठाकर देखे तो'' सन्यासी ने उत्तर दिया, फिर तुम्हीं बताओ! जो सचराचर को आँखे दे रहा है उसे तुम माला से अन्धा कैसे करोगे? जिसके कर्म में माला नहीं; विचार, आचरण में माला नहीं! उसके हाथ की माला को प्रभु नहीं स्वीकारते हैं।''

छोटे बालकों से आचार्य पूछते थे,''ये हाथ किसके'' बालक उत्तर देते थे, जिसने बनाये उसके।

आचार्य :-प्रभु ने बनाये हैं हाथ तुम्हारे! सावधान! प्रभु के हाथ प्रभु की ही भाँति प्राणी मात्र की सेवा में लगें।'' गोविन्द हरि!

मन्दिर का स्वरूप अति संक्षेप में आपको बताया है। समय का भान है! उस युग की कथा सुना रहा हूँ। जब माता-पिता चाहते थे कि उनका बेटा धर्मात्मा हो। ईश्वर का भक्त हो। धरती का भगवान बने! प्राणी मात्र का रक्षक सेवक और सुखकर हो!

आज आपसे एक प्रश्न पूछना चाहूंगा! आप आश्रम में बैठे हैं।

जन्माष्टमी का पावन पर्व है। स्वयं को धोखा न दीजियेगा। क्या आप अपने पुत्र को इसी धर्म के लिये पढ़ने भेजते हैं? आज की शिक्षा का उद्देश्य क्या है? यही न! मेरा बेटा पढ़ लिख कर अच्छी नौकरी पावे। मोटी तनखा

मिले और खूब मोटी घूस! बोलो? स्वयं को उत्तर दे डालो! तुम अपने बालक में कृष्ण देखना चाहते हो अथवा कंस? आज अष्टमी के दिन तुम्हारा पुत्र मौन अन्तर में पूछ रहा है :-

"माँ तू मुझे क्या बनाना चाहती है" उत्तर दो! स्वयं को मौन होकर उत्तर दो। आज तू पूतना बनेगी या यशोदा? भोले, अबोध शिशु के रूप को निहार! वही तो आज जीवन के चौराहे पर तेरी उँगली पकड़े खड़ा है। 'माँ! बता! मुझे कृष्ण बनाएगी कि कंस! मैं यशोदा को माँ कहूं कि पूतना को! माँ तू क्या है?" पूछ रहे है वसुदेव! आज मून्द के आँख स्वयं को उत्तर दे डालो! आज तो अपने को धोखा न दो! तुम्हें बाल कन्हैया की सौगन्ध! आह! आज की शिक्षा ही जब पूतना हो गई! गोपाल! यह क्या हो गया! धर्म! सन्त अछूत अग्राहय हो गए। शिक्षा को पूतना खा गई। मां अब अपने लाल को समाज द्रोही! सन्ततिद्रोही! घूसखोर (करप्ट) कंस बनाना चाहती है। आँखे तरस रही हैं मैय्या यशोदा के दरस को! आँखे बरस रही हैं बरबाद नष्ट होती इस महान संस्कृति के ढहते महलों को निरख के! वासुदेव! विश्व की महानतम संस्कृति जो प्राणी मात्र में ईश्वर देखती थी! सेवा को ही जिसने प्रभु का गीत बनाया, जो सबके लिये ही जीना है, ऐसा मान कर जिये। क्या पूतना नष्ट कर देगी उसको! हाँ! देव! हम कहाँ से कहाँ पहुँच गए। हर ओर पूतनायें हैं। अबोध शिशु दहलाए हुए हैं। वासुदेव आज अष्टमी है। प्रकट हो जाओ नाथ! त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!

प्यारे भक्त समूह! लीला दर्पण में स्वयं को निहारों! आत्म दर्शन करो! दो हजार साल की लम्बी गुलामी! लम्बी अंधेरी रात! सन 1947 में समाप्त हुई! आजादी आई! दो हजार वर्ष की गुलामी सहकर भी यह संस्कृति नष्ट नहीं हुई! क्यों? क्योंकि शिक्षा और समाज पर धर्म का अधिकार था। इसीलिये आप नष्ट नहीं हुए। परन्तु आजाद होकर आज सब कुछ नष्ट हो रहा! धर्म को अछूत बना कर बोलो तुमने क्या खोया क्या पाया। आजादी से पूर्व भी हम गुलाम थे। आजादी के बाद भी हम ही गुलाम है। अल्प संख्यक होने के नाते दूसरे संप्रदायों को अपने धर्मग्रंथ पढ़ाने का अधिकार है। परन्तु बहुसंख्यक होने के नाते आप को नहीं है। कोमल बाल्यावस्था में जो संस्कार न दे पाये। वह जाति वह संस्कृति क्या जीवित है? जिन्हें हम अल्पसंख्यक कहते हैं वे विश्व के बहुसंख्यक संप्रदाय हैं। उनके पास सत्ता है। शिक्षा है। जो सारे विश्व में बच्चों को संस्कार दे रहे हैं उन्हें यहाँ भी

अधिकार है। हम न यहाँ संस्कार दे पा रहे हैं और विश्व में भी हम कहीं भी सत्ता में नहीं है। तुम्हीं बताओ! क्या हम विनाश की ओर जा रही विश्व की इकलौती संस्कृति नहीं हैं ?

जिन्हें हजारों वर्ष की लम्बी गुलामी न मार सकी क्या वे आजाद होकर महाविनाश की गोद में सो जायेंगे? कंस जीत रहा है। हर ओर पूतना की जय जयकार है! काश! शिक्षा से धर्म को अलग न किया गया होता। सभी को पढ़ाने का न्याय सम्मत अधिकार दिया गया होता।।

हम धर्म निरपेक्षता की बात तो करते हैं परन्तु बलिदान सिर्फ हमारा ही होता है। बलि का बकरा मात्र यही संस्कृति है।

सनातन धर्म के बड़े एवं प्राचीन धार्मिक मन्दिरों का भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से राष्ट्रीयकरण हो चुका है। एम.एल.ए., एम.पी. और मंत्री उनकी कमेटियों के सदस्य होते हैं। तिरुपति बाला जी, बदरी नाथ, केदार नाथ आदि जितने भी बड़े मन्दिर है उनका चढ़ावा राजनैतिक और शाही पण्डों की जेब में चला जाता है। लगभग अस्सी करोड़ या इससे भी अधिक का चढ़ावा बलि का बकरा सनातन हिन्दू मन्दिर ही है। अन्य किसी सम्प्रदाय के धर्म स्थान में घुसने की हिम्मत इनमें नहीं है। मुर्दे का कफन हर कोई नोचता है न मुर्दे बोलते हैं न ही संस्कृति के महान लोग!

हमने पूछा उनसे कि आपने मन्दिर के धन का क्या उपयोग किया? कहने लगे उससे सड़के बनवा दी! कालेज खोल रहे हैं। हमने कहा टैक्स के रूप में आप जो हमारा खून चूस रहे थे क्या वह कम था? इस देश में सबसे अधिक टैक्स देने वाले इसी संस्कृति के लोग हैं उतने खून से क्या आपकी प्यास बुझी नहीं थी। मन्दिर तो धामिक ट्रस्ट है उसका धन तो उस धर्म और संस्कृति के प्रसार में लगना था। आप ही सोचें कि अस्सी करोड़ रूपये की पुस्तके यदि हम छपवा रहे होते तो प्रत्येक हिन्दू घर में दस पुस्तके प्रति वर्ष जाती तो क्या आज आप अपनी संस्कृति से इतने अनभिज्ञ होते। पहले पण्डे खा रहे थे। अब सरकारी पण्डे?

हम यह नहीं कहते कि आप हमारे मन्दिरों का अधिग्रहण न करें। आप सारे मन्दिर ले लें। परन्तु धन का प्रयोग सही उद्देश्यों में करें। अन्यथा नहीं क्या इतनी सी बात भी उनको समझ में नही आती? जिसके जीवन में ट्रस्टी की भावना ही नही वे ट्रस्टी हैं। आप के मन में प्रश्न उठता होगा कि इस प्रश्न को अन्य राजनैतिक अथवा सामाजिक (हिन्दुत्व के नाम पर बने) दलों

ने क्यों नहीं उठाया। उसका कारण है कि यह सब मिलकर चल रहा है। मंदिरों में यदि चार सदस्य सत्तारूढ़ दल के लेते हैं तो दो सदस्य इन दलों के भी ले लिये जाते हैं।

जो टैक्स में अपको चूस रहे हैं वे आपकी धार्मिक श्रद्धा को भी पूतनावत चबाये जा रहे हैं। अब वे स्वामियों को, धर्माचार्यों को गालियाँ नही देंगे तो उनका धंधा बंद नहीं हो जाएगा। हिंदुत्व के नाम पर नोट और वोट माँगने वाले मंदिरों के सदस्य बन कर आपकी श्रद्धा का अपमान करें। आप उसे देखकर भी मौन रहे। क्यों? आप स्वयं सोचें। हमारे पास न मिडिल ईस्ट का सोना है। और न ही पश्चिम से पौण्ड डालर की सम्पदा। हमारे मंदिरों का धन भी धर्म के प्रचार हेतु नहीं है। क्या हम जीवित रह पायेंगे?

धर्म प्राण हिन्दू जनता का साठ से अस्सी प्रतिशत धन चन्दे के रूप में, हिन्दुत्व के नाम पर बने राजनैतिक, सामाजिक और तथा कथित धार्मिक दल, सम्प्रदाय, परिषद और समाज एकत्र कर ले जाते हैं। लगभग 18 प्रतिशत बड़े मन्दिरों के माध्यम से सरकार और सदस्य ग्रहण करते हैं। आठ से दस प्रतिशत धन छोटे मन्दिरों, आश्रमो, सेवा संस्थाओं को मिलता है जिनको 'बड़े लोग भ्रष्ट कहते है। हम सन्यासी निरन्तर प्रभु नाम की सेवाओं को सारे भारत में करते हैं। निरन्तर धर्म ग्रन्थ छापते और मुफ्त बाँटते हैं। स्कूल, मन्दिर धर्म - शाला में योग-ध्यान साधना शिविर लगाते हैं। जन-जन को जगाते हैं। जो आप अपने चारों ओर अहर्निश देख रहे हैं। जो 90 से 92 प्रतिशत आपकी आस्था खा गये उन्होने लौटाकर एक मानस भी छपवाई हो तो बताये? जो धर्म प्राण जनता का 92 प्रतिशत धन खा गये उन्हें शिकायत है कि हम भ्रष्ट हैं। समाज, शिक्षा, सत्ता, राजनीति सब कुछ छीनने के उपरान्त धार्मिक आस्थाओं का भी ठेका करने वाले पुनः आप लोगों को भटका रहे हैं। धर्म धर्माचार्यों और संस्कृति के विरुद्ध आपके मन में तिरस्कार और घृणा के भाव भरते जा रहे हैं। आप उनकी भावनाओं को तौले! उन्हें पहचाने! देखें वे आपको कहाँ लिये जा रहे हैं। हम तो पापी है। भ्रष्ट हैं फिर भी सेवा कर रहे हैं। वे पवित्र और महान सिर्फ बटोर कर सो क्यों जाते है? हिन्दुत्व को जगाने के लिये ऐसे लोगों ने एक संस्था बनाई है। जिसका अध्यक्ष अथवा सदस्य कोई सन्यासी नहीं हो सकता है। सन्यासी लोकसभा व विधान सभा का सदस्य तो हो सकता है परन्तु इस महान संस्था का घटिया सदस्य भी नहीं हो सकता। संस्था का उद्देश्य क्या

है? (इस संस्था का जन समुदाय को फुसलाने का एक हथकंडा यह भी है कि इस देश के सन्यासी इकट्ठा नहीं होते। हम उन सबको एक मंच पर एकत्र करना चाहते हैं! साथ ही सन्यासी जो भ्रष्ट और अछूत हैं उस संस्था के सदस्य भी नहीं हो सकते।

आप कभी अपने बच्चों के स्कूल गए होगे। वहां जब स्कूल चल रहा होता है तो अध्यापक कभी इकट्ठा नही बैठते वरन् अपनी-अपनी कक्षाओं को पढ़ाते हैं। उसी प्रकार सन्यासी धर्म की कक्षा को पढ़ाने में व्यस्त हैं। इकट्ठा बैठकर क्या करें? सन्त-सन्त सब एक हैं। हम में दो हैं ही कहाँ? शायद सन्यासियों के प्रति ध्यान भटकाकर वे अपनी किसी सर्वथा गुप्त उद्देश्य को सिद्ध करना चाहते हैं। प्रभु ही जाने। आजादी के 70 वर्ष बाद, सत्ता में हारने पर अब उन्हें हमारी याद आई है। क्यों?।

कल जब शिक्षा हमारे पास थी तो समाज स्वतः जुड़ रहा था। दो सौ व्यक्तियों का परिवार था तो चूल्हा एक ही था। आज शिक्षा इनके हाथों में है तो प्रत्येक परिवार खण्ड-खण्ड हो रहा है। पिता पुत्र में दीवारें खिच रही हैं। परिवार समाज का सबसे छोटा समूह है। जब छोटी इकाई ही टूट रही है तो सबको संगठित करने का नारा तो लगा रहे हैं। परन्तु अलगाव की अभिशप्त शिक्षा प्रणाली पर कुछ कहना नहीं चाहते हैं। जब परिवार ही टूट रहे हैं तो धर्म संस्कृति और राष्ट्र को बांधना एक दिवास्वप्न नहीं तो क्या है? अपने पापों और अपराधों से जनता को भटकाने के लिए - धर्म, सन्यासियों और धर्माचार्यों को गालियाँ दे रहे हैं। विघटन की प्रक्रिया को रोकने के लिए वे मूल समस्या (शिक्षा प्रणाली) से जनता को बहला देना चाहते हैं। 70 वर्षों में धर्म और संस्कृति का पराभव जो उनकी ठेकेदारी में हुआ, उसका दोष भी हम पर मढ़ना चाहते हैं जो नितान्त उनका ही रहा।

आप ही बताएं! जब दीवार की प्रत्येक ईंट मसाला लेकर अलग भागना चाहेगी तो छत का क्या होगा? भ्रान्तियों और धोखाधड़ी की बल्लियों पर छत कब तक टिकाई जा सकेगी। परिवार दीवार की ईंट के समान है। आज ईंटे छिटक कर भाग ही नहीं रहीं वरन् चिटक कर टुकड़े हो रही हैं। छितरा जायेगी ईटें जब, तो धर्म और संस्कृति की छत भर भरा कर गिरेगी। उसके नीचे मानवता अकाल मृत्यु को ही तो प्राप्त होगी। फिर उन खण्डहरों में उल्लू और चमगादड़ ही रहेंगे।

यदि इस समाज, संस्कृति और धर्म रूपी छत की रक्षा करनी है तो इन

ईटों को छिटकने से रोकना होगा। टूटने से बचाना होगा। यह सब अच्छी धार्मिक शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा को पूतना के पंजे से छुड़ाकर यशोदा की गोद में डालना होगा। उद्देश्यपूर्ण संस्कारवान शिक्षा प्रणाली द्वारा ही राष्ट्र को भी संगठित किया जा सकेगा। इसी उद्देश्य से हम सन्यासी जुड़कर राजनीति नहीं करते, वरन् घूम-घूम कर धर्म रूपी गोंद का ज्ञान देकर ईटों को पुनः जोड़ने का मार्गदर्शन करते हैं। हम अलग नहीं हैं। हम सब एक हैं। प्राणी मात्र की सेवा ही हमारा धर्म है। अधिकार आपके पास हैं। हम तो चौराहे के पत्थर हैं। ठोकर खाकर भी सेवा ही करते हैं। यही हमारी नियति है।

पूतना जीयेगी अथवा बाल कन्हैया! कंस की इच्छा है पूतना जिये! भक्त मात्र की इच्छा है बाल कृष्ण! कंस हारता है। भक्त की जीत होती है। कन्हैया पूतना का उद्धार करते हैं।

पूतना का भाई शकटासुर जब सुनता है कि नन्हें बालक ने मेरी बहन की हत्या कर दी तो वह बदला लेने गोकुल पहुंच जाता है। नन्द बाबा और यशोदा व्यस्त हैं। नन्हें कन्हैया को शकट (गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं) के नीचे लिटाकर वे दूसरे कार्यों में व्यस्त हैं। तभी शकटासुर, शकट (गाड़ी) पर प्रकट हो जाता है। बाल कन्हैया उसकी भावनाओं को जानकर कस के लात मारते हैं गाड़ी उलट जाती है और शकटासुर उसके नीचे दब कर मर जाता है।

प्रभु को नीचे डालकर इस जीवन रूपी शकट को भरने की वृति ही तो शकटासुर है। हमारा सारा जीवन शकटासुर की सेवा में ही बीत जाता है। सारे समाज और संसार को नोचकर शकट भरने की शकटासुर वृति से ही तो आज इस महान संस्कृति का बिखराव, विघटन और सर्वनाश प्रारम्भ हो गया है। संकीर्ण होकर जो जीवन रूपी शकट को भरेगा प्रभु उसको शकट को उलट देगे।

भगवान सकट को भरने को मना नहीं करते हैं। प्रभु को शकट के ऊपर बिठाकर भरो। अर्थात शकट नारायण आपका है। हम निमित्त हैं आपके! संसार आपका है! शकट संसार सेवा के लिये है। हम शकटासुर नहीं बनेंगे। प्राणी मात्र के होकर, सब में आप हैं ऐसा मानकर इस भरे हुये शकट को सेवार्थ प्रयोग करेंगे।

कंस तृणावर्त को बुलाता हैं। उसे नन्हे शिशु की हत्या का आदेश

करता है। तृणावर्त गोकुल आता है, वायु में मायावी रूप बनाकर उड़ता रहता है। उसकी निगाहें नन्हें गोपाल पर पड़ती हैं। वासुदेव आँख मून्दकर सो रहे हैं। माँ यशोदा अन्य कार्यों में व्यस्त हैं। बाल-कन्हैया नितान्त अकेले एवं असावधान हैं। तृणावर्त उनको उठाकर, वायु का बवण्डर बनके ऊपर उठता है। उसकी इच्छा है कि तेज वायु का बवण्डर बनकर बाल कन्हैया को ऊँचा उड़ाकर चट्टानों पर पटक कर समाप्त कर दे। तृणावर्त ले उड़ा। प्रभु ने देखा कि माँ यशोदा एवं सब गोप-गोपियाँ, नन्द बाबा सभी भयभीत चहुँ ओर भाग रहे हैं। श्री भगवान ने अपनी देह का भार बढ़ाना आरम्भ कर दिया! भार बढ़ता गया! तणावर्त इस असह्य बोझ के नीचे दबने लगा। प्रभु उसे अपने नीचे दबाये अपने भार को तब तक बढ़ाते रहे जबतक तृणावर्त का प्राणान्त न हुआ! दुष्ट कंस ने फिर मात खाई! बाल कन्हैया की जय!

'तृण' का अर्थ है तिनका! 'आवर्त' का अर्थ है बवण्डर! 'तणावत' का अर्थ हुआ जो भारी से भारी वस्तु को भी तिनकों के समान उड़ा ले जावे! तणावर्त बवण्डर का रूप धारण करके आता है। प्रभु को लीलारूपी दर्पण में अपने रूप को देख रे भोले भक्त?

विषयी, मोहान्ध मन रूपी कंस का मित्र तणावर्त कौन है? विषय, वासनाओं, लिप्साओं, से भ्रमाये जीव को परिस्थितियों का बवण्डर बनकर उडाने, नचाने और नष्ट करने वाला आवेश ही तो तणावर्त है। चिन्ताओं के भयंकर बवण्डर को प्रकट करके जीव के संकल्प रूपी ईश्वरत्व को नष्ट कर पाप की ओर प्रेरित करने वाला तृणावर्त ही तो है। प्रभु भक्ति का सुन्दर संकल्प अपने विचारो से तृणावर्त को समाप्त किये बिना कभी भयमुक्त नहीं। हो सकता!

परन्तु तृणावर्त तो हमारे जीवन का पावन धर्म बन बैठा है। समाज, शिक्षा, राजनीति सभी में तृणावर्त समाया है। उड़ती धूल और तेज आँधियों के बवण्डर में भटकते हमारे नेता, सुधारक, समाजसेवी, चिन्तक ठीक से देख नहीं पाते हैं। समस्या रूपी पेड़ उन्हें दिखते नहीं हैं, परछाइयों पर कुल्हाड़े चलाते हैं। यह मानकर कि यही समस्या का पेड़ है। समस्यायें फूलती पनपती रहती हैं। हर ओर कांटे छितराती समाज को पंगु बनाती रहती है और परछाइयों पर चली कुल्हाड़ियों से बने नये गड्ढ़ों में समाज अपने दाँत, टाँगे, हाथ, पाँव सब तोड़ता रहता है। समस्या का समाधान तो हुआ नहीं, समाधान के नाम पर कुछ नये पाप नये रोग, नया भटकाव अधिक

ओढ़ बैठती है हमारी संस्कृति! काश! हमारे नायक और नेता, प्रभु की तृणावर्त लीला-दर्पण के अमृत को ही पाये होते। गोविन्द हरि!

तृणावर्त को वही मार सकता है जो स्थिति प्रज्ञ हो! तृणावर्त तुम्हारी सभी अच्छाइयों को नष्ट कर समाज और प्राणी मात्र के लिये कलंक बना देगा। न खुद सुख से जियेंगे और न जीने देगें किसी को! आज यह महान संस्कृति तृणावर्त से ही तो त्रस्त है। प्रत्येक व्यक्ति को तृणावर्त नचा रहा है। पापी कंस हर ओर ठहाके लगा रहा है। उदास है धरती मैय्या! कभी कृष्ण लीलाओं से आनन्दित और वरद होती थी। अब तृणावर्त, पूतना और कंस की लीलाओं से त्रसित और भयाक्रान्त है। जिन्दगी कैंसर का फोड़ा बन गयी है। न कोई निदान है! हर क्षण दुखता, सड़ता, रिसता रहा! राहत मिली चिता की लकड़ियों पर! अरे! यही देव दुर्लभ योनि है, प्यारे भक्त अपने और अपने परिवार में पनपते तृणावर्त को मारने का सुन्दर संस्कार संकल्प ले! वरद हो जीवन तुम्हारा!

प्रभु की बाल लीलाओं का रहस्य आपको स्पष्ट हो रहा है। उस युग के माता-पिता लीला ज्ञान को धारण कर अपने बच्चों के जीवन को उद्देश्य पूर्ण बनाते थे। सम्पूर्ण लीलाओं का विस्तार आज सम्भव नहीं होगा। इसलिये संक्षेप में रहस्य आपको बताते हैं। गोकुल और वृन्दावन में कंस द्वारा भेजे नाना असुर श्री बलराम एवं भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उद्धार को प्राप्त होते हैं। 'वत्सासुर! जीव की मोहान्धता! मेरा और पराया भाव। 'बकासुर'! बक का अर्थ है छल-कपट, दम्भ और ढोंग! जब तक बालक के जीवन से बकासुर का वध नहीं होगा वह प्राणी मात्र के लिये वरदान नहीं बनेगा। धरती का अभिशाप और मानवता का कलंक ही तो होगा।

वत्सासुर और बकासुर हमारे जीवन का भाग बन गये हैं। उस युग की शिक्षा में प्रत्येक माता-पिता एवं शिक्षाविद् इनको मारकर बालक को कृष्ण बनाने की प्रेरणा देते थे। इसलिये तो यह संस्कृति नष्ट नहीं हुई। लीलायें उनके जीवन रूपी वृक्ष का मूल (जड़) थीं। जब तक जड़ नहीं काटी गयी, समाज, संस्कृति और जाति गुलामी की हजारों साल लम्बी मार खाकर नष्ट नहीं हुई। लीला रूपी शिक्षा स्कूल के नष्ट होते ही पेड़ की जड़ें ही कटने लगी अब डालियों और पत्तियों के राग अलापते नेता हमें गाली देने लगे हैं। इन जड़ों को आप ही तो काटा था। अभी वृक्ष नष्ट नहीं हुआ है पुर्नजीवित हो सकता है।

'अघासुर वध की लीला! 'अघ'' का अर्थ है अज्ञान, पाप और अन्धकार। जो शिक्षा प्रणाली उस बालक के जीवन में अघासुर को न मार सकी; उसे कैसे अमृत कहा जाये! 'अघासुर' को मारे बिना समाज को नष्ट होने से नहीं बचाया जा सकता। प्रभु अघासुर का वध करके, हमें जीवन का मंत्र देते हैं।

'धेनकासूर' का अर्थ हैं ज्ञान एवं भौतिकता को गधे की तरह लादना। शिक्षा का वाहन आज धेनकासुर ही तो है। हम ग्रन्थों को रटकर डिग्री बटोरना चाहते हैं। हमारे जीवन में उस ज्ञान के साथ अद्वैत कहाँ हो पाता है।

एक बार एक डाक्टर (साइकोलोजी) हमसे मिलने आई। डाक्टरेट का विषय था, चाइल्ड केयर (बच्चों की देखभाल)। डाक्टर साहब पढ़ाती भी हैं और इसी विषय पर उन्होंने एक नया अनुसंधान ग्रन्थ भी लिखा है। उनके एक ही बालक है, और वे उसे इतना मारती हैं कि बेहोश हो जाता है। ऐसा प्रायः होता है। बाल विशेषज्ञ हैं वे। डिग्रियाँ हैं उनके पास! नये अनुसंधान भी इस दिशा में किये हैं। सम्भवतः इस बार राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित भी हो, और अपने ज्ञान का लाभ देने के लिये विदेशों में भी भ्रमण हो उनका। धेनकासुर की जय।

भौतिकता में धेनकासुर जो छाया तो उसने मनुष्य को धन पशु बनाकर रख दिया। ब्रह्मा जी ने नाना पशु पक्षी बनाये। अब ब्रह्मा भी हैरान हैं, कि यह नया पशु (धन-पशु) कहाँ से प्रकट हो गया। मैने तो बनाया नहीं। कोई नये ब्रह्मा प्रकट हो गये क्या? धेनकासुर गधे के रूप में विचरण करता था।

लाला जी ने करोड़ों रुपया बटोर लिया है। बड़े करोड़पति हैं। परन्तु डाक्टर ने खुराक बाँध रखी है :-- लाला जी आपको डायबटीज भी है, हाईपरटेन्शन भी, मीठा नही खाना, नमक भी नहीं लेना, थोड़ी सी उबली सब्जी, दो सूखी रोटी। एक टीका सुबह, एक टीका शाम को और दर्जन भर रंग बिरंगी गोलियाँ। आप ही बताओ, भारत में कुत्ता आज भी बढ़िया खाना खाता है, ओर टीके नहीं लगवाता है। लाला जी न खा सकते हैं न किसी को खाने दे सकते हैं। धेनकासुर भी न फल खाता था और न बालकों को खाने देता था। श्री बलराम ने उसको मारकर हमें स्वयं से, अपने बालकों के जीवन से तथा समाज से धेनकासुर वृत्तियों को नष्ट करने का अमृतमय ज्ञान दिया। काश! हम धेनकासुर से पुनः मनुष्य बन पाते।।

'प्रलम्बासुर वध की लीला है। परावलम्बन ही प्रलम्बासुर है। हमें

स्वावलम्बी होना है ईंट, मकान, तिजोरी के सहारे नहीं; घट-घट वासी आत्मा वासुदेव के सहारे जीना है। प्रलम्बासुर हमारे जीवन को, समाज को, संस्कृति को तथा समूल मानव जाति को नष्ट करने में सक्षम है। इसी लिए प्रभु इसका वध करते हैं।

एक युग वह भी था जब बाल लीलाओं द्वारा बालक सहज, सुबोध, सरस ज्ञान को धारण कर ग्यारहवें वर्ष विषयासक्त मन कंस को मारकर गुरुकुल में प्रवेश पाता था। यही तो कृष्ण लीला है, जो समाज में प्रत्येक बालक को कृष्ण बनाने हेतु थी। प्रभु ने भी ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश पाते ही कंस को मारा था। गुरुकुल की शिक्षा उनके जीवन में अमृत का संचार करती थी। आज सिनेमा, टेलीविजन में सेक्स, ठाँय-ठाँय, हत्या, लूट, दुराचरण का ज्ञान पाते हैं। लीला तब भी देखते थे, लीला अब भी देखते हैं। तब कृष्ण बनते थे, अब कंस बनते हैं। यही टेलीविजन और सिनेमा यदि सार्थक प्रयोग में लाये जायें। मनुष्य धरती का भगवान बने। धरती स्वर्ग हो जाय। नेता, समाज सुधारक हमें दोष देंगे। लीलाओं को कीचड़ बतायेंगे और . . .।

जब बचपन लीलाओं के अमृत से सींचा जाता था तब की बात कुछ और थी। वह राजा था। उसके पास समर्पित सेनायें थी, सुख, वैभव, ऐश्वर्य था। सब कुछ था। समय आया और सब कुछ त्यागकर वह वानप्रस्थी हो गया। फूस की कुटिया में जा बैठा। आज तुम एक दीवार नहीं छोड़ पाते। पिता पुत्र में मुकदमा और गोली चलेगी मकान की खातिर। कारण? पहले तुम, 'प्रलम्बासुर' का अपने जीवन में वध करते थे, आज तुम 'प्रलम्बासुर' के बन्धक हो। बन्धक की क्या मजाल जो स्वामी के विपरीत जाये।।

एक स्वामी जी से मिलने गये। उदास बैठे थे। पूछा, क्या हुआ? क्यों उदास हैं? अस्वस्थ हैं क्या? कहने लगे, कीमती टी.वी. लाये थे। चेले ने पटक कर चकना चूर कर दिया। हमने कहा, "स्वामी टी.वी. लाल जी, इसके अतिरिक्त भी कोई रोग है ?" कहने लगे, आपने टी.वी. लाल क्यों कहा? उत्तर दिया टूटा टी.वी. था और टूटे आप नजर आ रहे हैं। तो आप टी.वी. ही तो हुये। प्रलम्बासुर की जय बोलो।

सनातन आश्रम में बहुत सारी मातायें कारों में बैठकर आयीं। उनके बच्चों को आया उठाये थी। आधुनिक वेश भूषा और श्रृंगार उनको भारतीय कम विदेशी अधिक दिखा रहा था। कहने लगी, स्वामी जी, हमें भागवत की कथा सुनाओ। इस सन्यासी ने उत्तर दिया, "भगवान की कथा तुम्हारे

समझने योग्य है ही नहीं।'' ''क्यों? स्वामी जी'' उन्होने पूछा।

इस सन्यासी ने उत्तर दिया, "भागवत की कथा में फूहड़ गवांर गोपियाँ पराये लाल में भी भगवान देखती हैं, और तुम्हें अपने लाल के लिये आया (नौकरानी) चाहिए। तुम क्या सुनोगी भागवत। भागवत की कथा और लीला का उद्देश्य था कि हम अपने बाल में ईश्वर देखें, उसकी सेवा तथा लीला का आनन्द लेते हुए, उसे ईश्वर बनावें। गन्दे विचार रूपी असुरों का वध करावें।'

भागवत को सुनता है परीक्षित। अति विद्वान, लोभी, दम्भी सुनकर भी नही सुन पाता। क्यों? उसका मन विषयों का चिन्तन कर रहा है, कान उसके बन्द हैं, दम्भ उसमें हर क्षण (यदि वह कुछ सुन पाये) विरोध उत्पन्न करता है। छिद्रान्वेषण लीला के अमृत को लोप कर केवल दोष दिखलाता है। ऐसे लोग तो सहानुभुति के पात्र हैं।

एक विद्वान भक्त आये और कहने लगे, 'सनातन स्वामी, भागवत लिखा है कि धुन्धकारी प्रेत हो गया था। क्या तुम दिखा सकते हो ? "पूछा" यदि हम दिखा दें तो तुम पहचानोगे कैसे? उसने उत्तर दिया, 'प्रेत के पैर उल्टे होते हैं। एड़ी आगे रहती है और पंजे पीछे।

सन्यासी ने कहा,'तब तो जितने को प्रेत और चुड़ैल दिखा दूँ तुमको। जाना था प्रभु की राह, जा रहे हैं विषयात्मक जगत को तो एड़ी आगे और पंजा पीछे ही तो हुआ। बोलो कितने प्रेत देखोगे? नाराज होकर चले गये। कारण?

मथुरा में प्रकट हुये वसुदेव, गोकुल आते हैं। पूतना, शकटासुर और तृणावर्त आदि लीलायें गोकुल में होती हैं। फिर नन्द बाबा उन्हें वृन्दावन में ले जाते हैं। 'अघासुर', 'बकासुर', 'वत्सासुर', 'धेनकासुर', 'प्रलम्बासुर' आदि लीलायें वृन्दावन की हैं। रासलीलायें भी वृन्दावन में होती हैं। इसका रहस्य क्या है ?

'गो' के अर्थ हैं 'प्रकाश, गाय, ग्रह, नक्षत्र आदि और इन्द्रियां। 'कुल' का अर्थ है 'वंश'। पहले इन्द्रियों के कुल (गोकुल) में प्रभु को प्रकट करो। अन्यथा वृन्दावन में तुम्हें कुछ आनन्द नहीं मिलेगा। जब गोपाल इन्द्रियों में विराज जाये। इन्द्रियां प्रभु को समर्पित होकर ही आचरण और चिन्तन करें तब वृन्दावन में आओ।।

वृन्द का अर्थ है 'समूह'। वन का अर्थ है 'जंगल'। तब विचारों के समूह

रूपी वृन्दावन में 'अघासुर', 'बकासुर', 'वत्सासुर', 'धेनकासुर' आदि असुरों का वध करो। स्वयं को सुखद, वरद एवं नित्यानन्द को प्राप्त कराने को प्रभु लीलाओं का अमृत पियो।

इन्द्रियाँ बने गोकुल और विचार, पूर्ण रूपेण वृन्दावन! तब चलो कंस को मारने मथुरा। 'मथ' 'उरा'।

मथ का अर्थ है 'मन्थन' और 'उरा' का अर्थ है 'हृदय रूपी प्रांगण!' मार दे विषयी मन कंस को। पहुँच यमुना के किनारे! यमुना के किनारे? अर्थात जहाँ यमु (यमराज) 'ना' अर्थात नहीं है। मृत्यु नहीं है जहाँ! मेरा। गोपाल है वहाँ! गोविन्द हरि!

मार के कंस को; उग्रसेन रूपी तपस्या को, देह रूपी सिंहासन दो। वसुदेव, देवकी को मुक्त कराओ! वसुदेव आत्म ज्ञान और 'देवकी'? आत्मा को ही समर्पित होकर जीने की प्रतिज्ञा' रूपी 'देवकी' को जीवन धारा बनाओ! फिर सान्दिपनि ऋषि अर्थात् अध्यात्म की वेदगंगा में तपो। लीला से जीवन का रोम-रोम सींच डालो! हर क्षण सींच डालो! फिर लौट वासुदेव को घट-घट वासी-आत्मा को देहरूपी मथुरा के सिंहासन पर बिठाओ। आनन्द ही आनन्द हो!

अभी हम वृन्दावन में हैं। गोपाल बालकों के साथ गौओं को चराने जाते हैं। वासुदेव नंगे पाँव हैं। नन्दबाबा उनके लिये चप्पले लाते हैं। गोपाल पहनने से इन्कार कर देते हैं। कहते हैं, मेरे सखा सारे तो नंगे पाँव हैं मैं कैसे जूते पहनूँ? गरीब ग्वाल बाल तो सिले वस्त्र भी नहीं पहनते हैं। प्रभु भी सिले वस्त्रों को (जो नन्दबाबा मथुरा से लाये हैं) फेंक देते हैं। जो मेरे मित्र नहीं पहन सकते मैं भी नहीं पहनूंगा! नन्दबाबा दुखी हो जाते हैं। परन्तु वे भी क्या करे? कंस कर (टैक्स) बढ़ाये जाता है। बछड़े भले प्यासे भूखे मर जायें कंस को ढेरों मक्खन कर (टैक्स) में जाना चाहिये। कंस को कर दिये बिना उसके प्रदेश में रहना भी तो असम्भव है। गरीब गोप और गोपियाँ अपने बच्चों को भी दूध और मक्खन नहीं देती! कंस को 'कर' में यदि समय पर सामान न पहुँचा तो वह पापी सबको बहुत सतावेगा। बच्चों से छिपाकर दूध और मक्खन रखती हैं।

नन्हें कृष्ण का हृदय विद्रोह की अग्नि से धधक उठता है। कंस' और उसके दुष्ट पहलवानों और आततायी सैनिकों के लिये अब कर के रूप में सामान नहीं जायेगा। बाल कन्हैया ने अपने साथियों में घोषणा की। कैसे?

कन्हैया भला असम्भव को सम्भव कैसे कर दिखाएगें? ।

कृष्ण ने कहा, "दूध पर पहला अधिकार तो बछड़ों का है, उपरान्त हम बालकों का है। हम लोग अपनी बाल सेना बनायेंगे। हर बालक छिप कर देखेगा कि माँ मक्खन कहाँ छिपा कर रखती हैं। फिर हम लोग चुरा कर सारा मक्खन खा जायेंगे। जब मक्खन होगा ही नहीं तो नन्द बाबा कंस को देने भी नहीं जायेंगे। बछड़ों के साथ हम अन्याय नहीं होने देंगे। यदि घर के लोग उसे पूरा दूध नहीं देंगे तो हम उनकी नजर बचाकर बछड़ों को खोल देंगे। बोलो ठीक।'' सबने कहा ठीक! बोलो, बाल कन्हैया की जय! रे माखन चोर अब कब मिलेगा तू! तेरी छवि के दर्शन को भक्त मात्र की आँखें तरस रही हैं। गौए आज भी ढूँढती फिरती तुमको। भोली गोपियाँ माखन मिसरी लिये हाथ में, तड़प रहीं हैं। कब मिलोगे तुम! हे प्राणाधार। बालक गायों को लेकर चराने जाते हैं। 'काली दह' पर भयंकर कालिया नाग रहता है। जल को विषाक्त कर देता है। भोले बछड़ों को खा जाता। गौओं को मार देता है। जहाँ गौएं कटती हों उसे तुम कालिया नाग का स्थान जानों। जो उनकी हत्या करके उन्हे खा रहे हों उन्हें तुम कालिया नाग जानों। भोले बछड़ों की हत्या हो और आज के समाज सुधारक और नेता उसे उचित बतावें। तुम्हीं बताओ वे कौन हैं? क्या उन्हें हिन्दू संस्कृति और धर्म के प्रति कुछ कहने का अधिकार है? ठेके का दम फिर भी वे ही भरते हैं। वे ही हिन्दू धर्म, संस्कृति और मानवता के चिन्तक विचारक, सुधारक और ठेकेदार हैं। 'रोम' में बैठकर गऊ का माँस खायेंगे और भारत लौटकर हिन्दुत्व और चरित्र की बात करेंगे। सारे सन्यासी ढोंगी हैं! पापी हैं! धूर्त हैं! समाज को ठग रहे हैं! यहीं नारे वे और उनके अनुयायी लगाते मिलेंगे आपको। श्री हरि! गोविन्द हरि!! प्रभु कैसी परीक्षा ले रहे तुम!

प्रभु की लीला का रहस्य जानो! जिसने दस इन्द्रियाँ रूपी दस फन वाले कालिया नाग को नथ लिया, वही तो मेरे प्रभु को जानेगा। इन्द्रियाँ ही तो कालिया नाग हैं जो हमको काल के पंजों में फंसा देती है तथा कालावीत कृष्ण से छुड़ा देती हैं। सो कालिया नाग को नथ।।

कालिया नाग को वही नाथ पावेगा जो अपने जीवन में पूतना आदि असुरों का बध कर आया हो। प्रभु, लीलाओं द्वारा हमें हमारा धर्म राह एवं गंतव्य स्पष्ट कर रहे हैं। रे भक्त मात्र! गोपाल कितना प्यार करते हमको! लीलाओं द्वारा हमारी राह प्रकाशित कर रहे हैं। आओ आज कालिया नाग

को नाथ डालने का संकल्प कर डालें। सारे असुरों को विचारों से मिटाकर इन्द्रियों को 'गोकुल' बनावें; विचार वृन्दावन हो और देह मथुरा। यमुना के तट निर्भय प्रभु स्मरण, चिन्तन, आचरण में तपें। जय हो तुम्हारी!

प्रभु को रास लीलायें बाल्यावस्था तक ही सीमित हैं। ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश पाते ही कंस का बुलावा आया। मथुरा गये गोपाल और फिर लौटे ही नहीं। लौटने का वायदा करके जो गये तो गोकुल और वृन्दावन तड़पता ही रहा। गोविन्द न आये! कंस को मार कर वसुदेव और देवकी को मुक्त कराया। राजा उग्रसेन को जेल से मुक्त करा कर गद्दी पर बिठाया। राजा उग्रसेन कंस के पिता हैं। उसके उपरान्त, वसुदेव सान्दीपनि ऋषि के यहाँ पढ़ने चले गये।

उस समय ग्यारहवें वर्ष ही बालक ऋषि कुल में पढ़ने जाता था। वहीं प्रभु का मिलन सुदामा और उद्धव जी से हुआ। लौटकर आये तो राजा उग्रसेन ने पद त्याग दिया। पच्चीसवें वर्ष श्रीकृष्ण मथुराधीश हो गये। मथुरा का सिंहासन उनकी मनोहारी छवि से सुशोभित हो उठा। पचास वर्ष की अवस्था तक वह मथुराधीश रहे। इसी समय आप मथुरा त्याग कर द्वारिका जा बसे। भगवान ने पूर्ण ब्रम्हचर्य का पालन किया। इक्यानवें वर्ष में उनका प्रथम विवाह रुकमणी से हुआ। यह विवाह भी प्रभु ने उसकी प्रार्थना पर उसके उद्धार हेतु किया। ऐसा उज्जवल चरित्र था उनका। इक्यावनवें वर्ष ही जब विवाह का समय था तब श्री भगवान वृन्दावन पधारे। गोप, गोपियाँ, नन्द तथा यशोदा जी को द्वारिका लिवा कर ले गये। उनकी उपस्थिति में ही विवाह होगा ऐसा। भगवान वसुदेव का संकल्प था।

जो उनके जीवन वृत्त से कतई अनभिज्ञ हैं वे ही उनकी लीला में कीचड़ देखते हैं। कीच थी आँखों में अपनी संसार सारा कीचड़ से सना नजर आ रहा था। ऐसे तथाकथित समाजी सहानुभूति के पात्र हैं। क्या शुकदेव जैसे तपस्वी। किसी साधारण व्यक्ति की कथा सुनाते और आसन्न मृत्यु का वरण करते। महाराज परीक्षित मोक्ष हेतु उनकी लीला सुनते? जब प्रभु तीन वर्ष के थे, तब श्री राधा विवाह कर गोकुल में आई थीं। एक छोटे बालक का प्रेम ही तो श्रीकृष्ण व राधा की पवित्र जोड़ी है। छोटे बालक की अध्यात्म लीला में तो उनको सारा व्यभिचार दिख गया, परन्तु जवान बहुओं और बेटिओं के साथ सैक्सी फिल्में देखते समय उन्हें जरा भी लज्जा शर्म नहीं आती। उनके द्वारा भ्रमाई, समाज को भटकाने वाली फिल्मी माताएं भी आपको हर घर,

चौराहे पर कीचड़ उछालती मिलेंगी। बालक की लीलाओं में तो गन्दगी है परन्तु उनके पति को लात मार कर, तथाकथित समाजाचार्यों के साथ रात-दिन स्वछंद घूमना अति पवित्र है। बलिहारी तो उन बुद्धि प्रकाशों की है जो विवेकहीन होकर उनके प्रलाप को सुनते हैं परन्तु आत्मस्थ होकर स्वयं निर्णय नहीं करते। उनको लम्बा लेक्चर देकर जब उनकी श्रीमती को भी ले उड़ते हैं तथाकथित समाज सेवा हेतु तो भक्त राज चौराहों पर रोते नजर आते हैं। उन्हें कृष्ण लीला भले समझ न आयी हो परन्तु यह लीला तो अच्छी तरह समझ में आ जाती है। गोविन्द हरि!

रास लीला जीवन का अमृत है। तपस्या का मंत्र है। प्रभु प्राप्ति का सहज सूत्र है। कन्हैया प्रत्येक गोपी के साथ रास कर रहे हैं। कन्हैया ही तो घट-घट वासी आत्मा हैं और जीव मात्र ही तो गोपी है। आज भी नारायण घट-घट वासी होकर, एक साथ, एक समय में, हर ओर सर्वत्र सचराचर में जीव रूपी गोपियों के साथ रास करते हैं। आत्मा होकर वे ही तो इस देह रूपी बाँसुरी में प्राणी को फेंक रहे हैं। उन्हीं के सुख से तो जीव रूपी गोपी सुखी है, जीवित है, ज्ञान और विवेक को प्राप्त है जिस दिन चल दिये त्याग के इस देह को गोपाल! चिता की लकड़ियों पर कालयवन खायेगा इसको! रास लीलाओं के सूक्ष्म ज्ञान को, जीवन के सूक्ष्म रहस्यों को; उत्पत्ति के गूढ़ रहस्यों को तथा ईश्वर प्राप्ति के सरस सहज मार्ग को नाटकीय, सरल एवं मधुर ढंग से समझाया है। भगवान वेद व्यास जिन्होंने वेद दिये उन्होंने ही यह लीला ग्रन्थ भी दिये हैं। एक सत्य; दूसरा असत्य। एक पुण्य; दूसरा पाप कैसे हो सकते हैं। यदि इतनी सी बात हमारे मित्रों को समझ में आ जाती तो वे शायद इतना न भटकते और न ही समाज को भटकाते। जिनके कभी गुलाम थे वे। अभी भी उनकी चौदह सौ साल पुरानी जूठन को धर्म के नाम पर लादते फिर रहे हैं, "मूर्ति पूजा ढोंग है और प्रभु सातवें आसमान पर निराकार होकर रहते हैं। मुहर अभी छूटी नहीं है। उनकी ही 'बी' टीम बने हैं। चारों वेद प्रभु तो घट-घट वासी गाते हैं। इन्होंने उन्हें सप्त लोक में कैद करके रख दिया है। इनसे पूछे बिना अब वे धरती पर आ ही नहीं सकते। इनके भीतर अब भगवान हैं ही नहीं। सातवें आसमान में जो बैठे हैं। जहाँ से भगवान हट जाये वहाँ शैतान का वास होता है, ऐसा हमने पूर्वजों से सुना है। यही तो कृष्ण और कंस की राम और रावण की कहानी है।

बाल हठ के सम्मुख नन्द बाबा भी हार मान लेते हैं। मन ही मन भयभीत

भी हैं। 'कंस' को 'कर' के रूप में कुछ नहीं भेज पा रहे हैं। ब्रम्हा ने भी प्रभु की परीक्षा लेनी चाही और उनको वसुदेव से क्षमा माँगनी पड़ी। गोवर्धन लीला में इन्द्र को भी झुकना पड़ा। कन्हैया की इच्छा का हम सबको सम्मान करना चाहिये।।

उधर कंस भी जान गया है कि उसका शत्रु साधारण नहीं है। सम्पूर्ण यादव जाति में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी है। नन्द ही नहीं वरन सम्पूर्ण अधीन राजाओं ने कंस को 'कर' भेजना बंद कर दिया है। इतने भयंकर विद्रोह को युद्ध द्वारा दबा देना सम्भव नहीं है। क्यों न छल से बलराम और श्रीकृष्ण को यहाँ पर बुला कर मरवा दूँ। यदिं और किसी को भेजूंगा तो नन्द सशंकित हो कृष्ण, बलराम को नहीं भेजेंगे। किसी ऐसे व्यक्ति को भेजना चाहिये जिस पर उन्हें सन्देह न हो तथा रत्नादि का उपहार देकर भेजना चाहिये। जिससे उनको कंस की भावना पर भी संदेह न हो। कंस ने यज्ञ रचाया। अक्रूर जी को, श्रीकृष्ण और बलराम को लिवा लाने, स्वर्ण रथ देकर भेजा साथ में रत्नादिक वस्त्र तथा नाना भेट लेकर जाने को कहा अक्रूर जी, नन्द जी के परम मित्र है। परम स्नेही एवं सम्बन्धी हैं। दोनों का आपस में असीम प्यार है। कंस ने अक्रूर जी को भी अंधेरे में रखा। अपनी असली मंशा का भान तक भी न होने दिया। अक्रूर जी भक्त हैं। सच्चरित्र हैं। तपस्वी हैं। वे भोले अवश्य हैं। परन्तु मूर्ख नहीं हैं। उनके मन में भी कंस की चाल सन्देह बनकर छू जाती है। राजाज्ञा का पालन करना उनका धर्म है। उन्हें दो दिन बाद कृष्ण से मिलने जाना है। इससे पूर्व ही उन्हें भी कुछ करना है। अक्रूर जी अपने विश्वास पात्र सेवकों को हर ओर भेज रहे हैं। सभी यादव तथा क्षत्रिय राजाओं के पास जो कंस के अधीन तो हैं परन्तु वसुदेव के परम हितैषी हैं; तथा जो कंस से नाराज भी हैं। अक्रूर जी जानते हैं कि कृष्ण और बलराम वसुदेव के पुत्र हैं तथा कंस उन्हें मिटाने के हेतु ही यज्ञ रचा रहा है। पापी की बुद्धि नष्ट हो जाती है। धर्मात्मा सहज बुद्धि से समाधान ढूंढ लेता है। आश्वस्त होकर अक्रूर जी अपने प्यारे गोविन्द के दर्शन को चल देते हैं।

नन्द जी के द्वार पर अक्रूर जी का स्वर्ण रथ रुक गया है। वे रथ से उतरते हैं। अतिथि सेवा हेतु नन्द जी दौड़कर आये हैं। अक्रूर जी को देखकर उन्हें असीम आनन्द प्राप्त हुआ है। अक्रूर जी और नन्द बाबा एक दूसरे से लिपट गये हैं। नेत्रों से अविरल जल की धारायें प्रवाहित हैं। रोम-रोम पुलकायमान है। उनके सुख की कल्पना कौन कर सकता है।

निष्पाप नन्द, तपस्वी अक्रूर जी को घर में लेकर आये हैं। श्री बलराम एवं भगवान श्रीकृष्ण उन्हें प्रणाम करने आये हैं अक्रूर जी उनके दर्शन करते ही समाधिस्थ हो गये हैं। अपलक उनकी नयनाभिराम छवि को निहार रहे हैं। नेत्रों से अविरल अश्रु धारायें प्रवाहित हैं। उन्हें समय का भान भी नही रहा है। अपने हाथों में वसुदेव का हाथ थामें जाने कहाँ खो गये हैं। उस दृश्य का वर्णन करना अति कठिन है। गोविन्द हरि! हरि ॐ! नारायण हरि। भक्तगण समय का भान कथा का अवरोध बना हुआ है। अवरोध भी अति सुखद है। गोपाल की जन्माष्टमी जो है। एक सहस्त्र युग भी आप कथा सुने मुझे सुनाने का सुख है। उनकी छवि के वर्णन दर्शन का लालच है। हर क्षण को उनसे छू कर बिताने की उत्कट प्यास है मुझको आप सुनने का आनन्द ले रहे हैं, मैं सुनाने का आनन्द तो ले ही रहा हूँ। देखने का भी अवर्णनीय आनन्द मिल रहा है। अक्रूर समाधिस्थ मेरे वसुदेव में खो गया है। दाढ़ी आँसूओं से भीग गयी है। उनके रेशमी वस्त्रों पर टप-टप आँसू गिर रहे हैं। लकीरें बनाते वस्त्रों में ही लोप हो जाते हैं। मेरे गोपाल धीरे से स्वयं को अलग करके वहाँ से हट जाते हैं। वे जानते हैं जब तक प्रभु हटेंगें नहीं पवित्र अक्रूर स्वस्थ नहीं होंगे। इसीलिये भगवान श्री वसुदेव, श्री बलराम जी के साथ वहाँ से हट जाते हैं।

अक्रूर जी तपस्वी नन्द से श्रीकृष्ण और बलराम को कंस के यज्ञ में भेजने के लिये कहते हैं तो नन्द बाबा स्तब्ध रह जाते हैं। वे भावी आशंका और भय से जड़ हो जाते हैं। उनकी मनस्थिति को अक्रूर जी की खोजी आँखें भाँप लेती हैं। अक्रूर उनके कन्धे पर प्यार से हाथ रख देते हैं और फिर उनको सारी पहेली स्पष्ट करके बताते हैं। उन्हें समझाते हैं कि अब समय आ गया है जब मथुराधीश को प्रकट होकर कंस का उद्धार करना चाहिये। कंस की तैयारियों को सविस्तार समझाकर अपनी ओर से की गयी तैयारियों को भी नन्द को बताते हैं। श्री नन्द बाबा आश्वस्त होते हैं तथा स्वीकारात्मक सिर हिलाते हैं। मुँह से कुछ कह नहीं पाते हैं। मानो बोल ना भूल ही गये हों।

यशोदा जी ने सुना तो फफक कर रो उठीं। गोकुल में आग की तरह यह सूचना फैल गयी कि अक्रूर जी श्री बलराम एवं भगवान श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने के लिये आये हैं। गोकुल की एक शाम, बहुत उदास हो गई। श्री राधा जी ने सुना तो मूर्च्छित हो गई। रे अक्रूर! तू क्यों क्रूर हो गया।

गाँव में एक नवविवाहिता दुल्हन बनकर आई थी। चार वर्ष के नन्हें बालक ने उनसे कहा था कि तू मेरी है। फिर नन्हीं बाँहों को फैलाकर अपने में समेटना चाहा था। उसका भोला साँवला चेहरा, मोर मुकुट से सजी सुन्दर केशराशि, पीताम्बर ओढ़े हाथ में छोटी सी बाँसुरी लिये। श्री राधा ने उस नन्हे भोले सुकमार को अपने सीने में भींच कर कहा था, 'मेरे कान्हा! मैं तुम्हारी हूं।''

'फिर तू मेरे साथ खेलेगी न!

हाँ!'' ''हर रोज''।

"हाँ कान्हा! हर क्षण!''

"जब मैं बाँसुरी बजाऊँ तो समझ लेना मेरा खेलने को मन हो रहा है। आना जरूर नहीं मैं बहुत उदास हो जाऊँगा।'' बस चला गया। श्री राधा उसे जाते देखती रहीं। आज वह सपनों का जादूगर कंस की नगरी जा रहा है। अभी दसवाँ वर्ष ही तो पूरा होने आया है। कहाँ बालक कन्हैया और कहाँ पापी कंस, उसकी सेना और मल्ल! गोप एवं गोपियाँ तड़प रहीं हैं। गौओं ने चारा नहीं खाया है। मौन सब अपनी पीड़ा पिये जाती हैं। नहीं पी पाती। तो फफक कर रो उठती हैं। गोपाल मत जाओ। मत जाओ! उनका अन्तर मन कराहकर चीत्कार कर रहा है। कंस कृष्ण से कुपित है। उसे 'कर' मिलना बंद हो गया है। कंस तुम्हें धोखे से बुला रहा है कन्हैया।

रथ चल दिया है। श्री बलराम एवं भगवान श्रीकृष्ण सबको ढाँढस बंधाते शीघ्र लौटने का वचन देते श्री नन्द बाबा के साथ रथ पर आरूढ़ हो गये हैं। अक्रूर जी संग में हैं। रथ जा रहा है। गोकुल बिलख रहा है। हवा भी तो चली नहीं, फिर भी कितना भयंकर तूफान उठा है कि प्रत्येक जीव भीतर बाहर से उजड़ के रह गया है। गोप और गोपियाँ अपने बच्चों से कह रहे हैं कि वे दौड़कर रथ का पीछा करें। तैयार होकर रथ के पीछे दौड़ते जायें। कान्हा का अहित न होने पाये। उन्हें समझा रहे हैं कि प्राणों की परवाह न करना। पापी कंस यदि दुष्टता पर उतर आये तो पहले अपने प्राणों का उत्सर्ग करना। तुम्हारे जीते जी कोई कन्हैया को छू भी न पाये। देखते ही देखते गोकुल से बाल युवा यादवों के समूह दौड़े मथुरा जा रहे हैं। कोई किसी के लिये रुक नहीं रहा। दौड़ते हुए गोपों ने कहा है कि कन्हैया हम पीछे आ रहे हैं। हमको लिये बिना अब नगर में प्रवेश मत करना। नगर के बाहर वाटिका में ही रुक जाना। समूह दौड़े जा रहे हैं। गोपियों से श्री

राधा ने कहा है कि प्रभु की तपस्या में बैठ जाओ। गोपाल के लिये हम हर क्षण तपेगीं। हमारी तपस्या पापी कंस को ध्वस्त कर देगी। वसुदेव का बाल भी बाँका न होगा। वे यमुना मैय्या की प्रार्थना करती हैं। भोले शंकर को रोकर जगा रहीं हैं। जगदम्बा की मूर्ती के चरणों में बिछी जा रही हैं। धन्य हैं वे गोपियाँ! उनकी पवित्र चरण धुल को, चूम ले रे मन! उनकी भावना को कौन पहुँच सकता है।

प्यारे भक्त वृंद! आपको कृष्ण कथा नहीं सुना रहा हूं। कृष्ण कथा से परिचय मात्र करा रहा हूं। आज का प्रवचन तो कथा का परिचय मात्र है। जिस दिन कथा सुनेंगे गोपाल की, उस दिन, उसी क्षण, विषयी मन कंस नष्ट हो जावेगा। प्रभु की कथा को जो भक्ति, श्रद्धा, आस्था एवं एकाग्र होकर सूनेगा उसके सारे पाप नष्ट होंगे वह महा पुण्य को प्राप्त होगा।

मथुरा में कुम्भ मेले जैसी भीड़ है। हर ओर रथों, घोड़ों, ऊटों पर सवार पैदल लोगों के समूह निरन्तर मथुरा की ओर बढ़ रहे हैं। कंस को विस्मय है। कि उसने इतना बड़ा यज्ञ तो रचाया नहीं था और न ही उसके पास इतनी बड़ी व्यवस्था थी। इसीलिये उसने किसी को विशेष आमंत्रण भी नहीं दिया था। यहाँ तक कि अपने श्वसुर जरासंध तक को सूचना नहीं दी थी। फिर भी मनुष्यों के समूह बाढ़ की तरह मथुरा में धंसते जा रहे हैं। मथुरा के चारों ओर फैलते जा रहे हैं। कंस क्या जाने कि वसुदेव देवकी की वर्षों की जेल की तपस्या तथा कंस के पिता महाराज उग्रसेन की जेल में की गई वर्षों लम्बी तपस्या आज फलवती होगी। कन्धे से कन्धा छिल रहा है। बाहें फैला नहीं सकते। सड़कों पर आदमी से आदमी चिपका हुआ है। कंस ने कृष्ण को पागल हाथी से कुचलवाने की योजना बनाई थी। हाथी निकलेगा किधर से कंस के गुप्तचरों ने उन्हें सूचना दी कि सड़कों पर भीड़ में दर्शनार्थी भीड़ वस्तुतः योद्धाओं की है। वे सैनिक हैं। जो विद्रोही राजाओं के साथ दर्शनार्थी बन कर आये हैं। पसीने की धारायें कंस के माथे से बह चलीं। उसे लगा जो जाल उसने श्रीकृष्ण व बलराम को मारने के लिए बनाया था? उसमें वह स्वयं फँसता चला जा रहा है। भीड़ दर्शनार्थियों की नहीं है वरन छद मवेशधारी विद्रोही राजाओं की सेनाओं की है जो बिना लड़े ही नगर में प्रवेश पा गये हैं। कंस का महल, जेल, दरबार सब कुछ उन्होंने घेर लिया है। नन्द बाबा, श्रीकृष्ण श्री बलराम अपने सखा गोपों के साथ बाहर वाटिका में रुके हैं। वाटिका के चारों ओर यज्ञ के दर्शनार्थ आये

(सैनिकों) की भीड़ है। कंस वहाँ पहुचना तो दूर अपने महल से निकल कर नगर में भी घूम नहीं सकता है। बाहर निकलने से डरता है।

नन्द बाबा से आज्ञा लेकर श्री बलराम एवं भगवान श्रीकृष्ण नगर में प्रवेश करते हैं। नगर वासी अति प्रसन्न हैं। जान सब रहे हैं पर बोलते नहीं। है। वे सब कंस से दुखी हैं। परन्तु जरासंध और कंस के आतंक से वर्षों से चुपचाप सहते चले आये हैं। जब से महाराज उग्रसेन जेल में बन्द हुए हैं बहुत से प्रजा जनों ने स्वेच्छा से सारे सुखों को त्याग कर तपस्या का वरण कर लिया। बहुत से प्रजाजन व्रतादिक करने लगे हैं। शैय्या का परित्याग कर भूमि शयन करते हैं। व्रत करते हैं। अपने धर्मात्मा महाराज उग्रसेन के लिये वे पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर वर्षों से निरन्तर तप रहे हैं। आज वे सब प्रसन्न हैं। सड़के विद्रोही सेनाओं एवं अधीनस्थ राजाओं द्वारा घिरी हैं। कंस भीगी बिल्ली सा अपने महल में कैद है। अपनी चूहेदानी में स्वयं चूहा बन के फस गया है। जनता के मन में अपार हर्ष है। आज कृष्ण बलराम, स्वतंत्र नगर घूमेंगे और कंस कुछ न बिगाड़ पायेगा। कंस भी मन ही मन जान गया है कि अब शतरंज की बाजी उलट गयी है। जरासंध से मदद मिलना तो दूर सूचना भी नहीं जा सकती। प्रभु से पहले प्रभु की योग माया जाल बिछाती चल रही है। बिना युद्ध लड़े कंस हार रहा है। चन्द चाटुकारों, सैनिकों दरबारियों और स्वजनों के अतिरिक्त उसके राज्य में उससे सहानुभति रखने वाला कोई भी तो नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण एवं श्री बलराम ने नगर में प्रवेश किया है। उनकी जय-जयकार से नगर गूंज उठा है। आरती का थाल लिये दुकानदार गृहस्थ सड़कों पर उतर आये हैं। निर्भय प्रभु की आरती उतार कर धन्य धन्य हो रहे हैं। स्त्रियाँ पुष्प वर्षा कर रहीं हैं। प्रजाजन गोप बालकों को खिला रहे हैं। उन्हें सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित कर रहे हैं। कोई उन्हें जूते पहना रहा है। पुष्प मालाओं के समूह बाल मण्डली को पहनाये जा रहे हैं। गुप्तचर निरन्तर कंस को सूचना दे रहे हैं। कंस का भय और आतंक बढ़ता जा रहा है। नगर वासियों के कृत्य उसे खाये जा रहे हैं। सारा नगर श्रीकृष्ण, श्री बलराम, महाराज वसुदेव के जय घोष से गूंजने लगा है। कंस को लगता है कि उसका मस्तिष्क फट जाएगा। पिंजरे में बन्द शेर की भाँति अपने महल में भटक रहा है, तड़प रहा है।

कथा संक्षेप करते हैं। पागल हाथी प्रभु द्वारा उद्धार को प्राप्त होता है।

कंस के मल्ल भी कुश्ती में ही मारे जाते हैं और कंस भी कृष्ण के हाथों मृत्यु का वरण करता है। उसकी पत्नियाँ अस्ति और प्राप्ति वैधव्य को प्राप्त होती हैं। वासुदेव जेल से महाराज उग्रसेन, वसुदेव को, देवकी को मुक्त कराते हैं। वे क्षण बड़े ही मार्मिक हैं। उन क्षणों का वर्णन करना वाणी द्वारा सम्भव नहीं है। महराज उग्रसेन की इच्छा है कि वसुदेव मथुराधीश हों परन्तु वसुदेव इसे किसी प्रकार भी नही स्वीकारते हैं। महाराज उग्रसेन वसुदेव से वासुदेव की भीख मांगते है, जिसे वसुदेव सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। महाराज उग्रसेन पुनः मथुराधीश सुशोभित होते हैं और भगवान श्रीकृष्ण युवराज।

प्रजाजन आनन्द विभोर नगर को दुल्हन सा सजाते हैं। मथुरा ही नहीं सम्पूर्ण प्रदेश में प्रजाजन आनन्द-मंगल उत्सव मनाते हैं। वृन्दावन झूम उठता है। लोग दान कर रहे हैं। मिठाइयां बांट रहे हैं। नूतन देवालयों, सेवाश्रमों की प्रतिष्ठा करवा रहे हैं। सड़कों पर मगन होकर नाच रहे हैं। जिस दिन भगवान कृष्ण ने कंस को मारा है उसी दिन वे पूरे दस वर्ष करके, ग्यारहवें में प्रवेश पाये हैं। उनका जन्म दिन भी वही था।

भगवान श्रीकृष्ण ऋषि सान्दीपनि के आश्रम में शिक्षा हेतु भेज दिये जाते हैं। ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश पाते ही बालक शिक्षा हेतु गुरुकुल में प्रवेश पाते थे। यह प्रथा अब समाप्त हो चुकी है परन्तु इसका प्रचलन अभी भी कई स्थानों पर है। सौराष्ट्र के काठी लोग जो वस्तुतः विशुद्ध रूप से यदुवंशी हैं उनमें आज भी इस प्रथा का प्रचलन है तथा रूस में भी यह प्रथा ही प्रचलित है अपःभ्रश रूप में वहाँ बालक ग्यारहवें वर्ष ही स्कूल जाता है इससे पूर्व वे जंगल में उड़ती चिड़ियाँ की भाँति स्वतन्त्र होते हैं। ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश पाते ही उसे माता-पिता से अलग होकर, स्कूल में रहना और पढ़ना होता है।

गुरुकुल में आते ही बालक का यज्ञोपवीत संस्कार होता था। आज जैसे आप घर में बालक का यज्ञोपवीत संस्कार करते हैं, ऐसा पूर्व काल में नहीं होता था। गुरुकुल की शिक्षा समाप्त हुये हजार से अधिक वर्ष हो चुके हैं। इसलिये आप भ्रान्तियों को सत्य मान बैठे हैं। अथवा सत्य ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। गुलामी की काली चादर इस संस्कृति पर हजारों वर्ष पूर्व छा गयी थी। विश्वविद्यालय और धर्मग्रन्थ फूंके जाने लगे। मौत की आन्धियाँ सारे भारत को दहलाने लगीं। उसका बहुत ही छोटा-स्वरूप

आपने बंगला देश के उदयकाल में देखा सुना है। अति न्यून! इससे भी अधिक भयावह! विद्वान; ऋषि, सन्त गाजर मूली की तरह काट दिये गये। अपनी इज्जत और जीवन को बचाने के लिये लोग जंगलों में छिपने लगे। विस्थापित होने लगे। इसी में पीढ़ियाँ गुजर गयीं। आज के कल्पना शून्य बुद्धिवादी विश्वविद्यालयों में कूलरों की ठन्डी हवा के नीचे बैठकर कितना अनुसन्धान कर पायेंगे? उनकी टूटी हुयी दूरबीनें भी लन्दन में बनी हैं। क्या देख पायेंगे बेचारे।

इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा ही नहीं बालकों की सभी प्रकार की शिक्षा ही नष्ट हो गई। कन्याओं का घर से निकलना दूभर हो गया। स्वयंवर की प्रथा ही समाप्त हो गई। क्यों?

जिस सम्प्रदाय के गुलाम हम बना दिये गये थे वहाँ नारी को मनुष्यता के भी अधिकार नहीं थे। पुरुष को धर्मसम्मत अधिकार था कि वह चार पत्नियाँ रखे। जिसे चाहे तीन बार "तुम्हें त्यागता हूँ।" ऐसा कह कर घर से बाहर निकाल दे। विवाह के समय में जो छोटी सी एक रकम तय हो जाती थी उसी को लेकर वह सड़कों पर चल देती थी। स्त्री को स्वेच्छा से पुरुष को त्यागने का अधिकार नहीं था। स्त्री का सन्तान तथा मकान पर अधिकार नहीं था। स्त्री को उनके धर्म ने सम्पत्ति माना था। पुरुष जब चाहे पूर्व पत्नियों का परित्याग कर दें। उनके स्थान पर नई पत्नियाँ ले आवे। चार पत्नियों के अतिरिक्त उन्हें हरम (वेश्यालय) बनाने का भी अधिकार था। वह चाहे जितनी भी औरतों को वेश्याओं के रूप में रख सकता था। औरत को धार्मिक स्थानों में जाने और वहाँ जाकर पूजा करने का भी अधिकार न था। यह उनके धर्म एवं न्याय सम्मत अधिकार थे। आज भी यह प्रथाएँ भारत में प्रचलित हैं। इसके विपरीत भारतीय संस्कृति ने नारी को पुरुष से महान माना था। नारी को मन चाहा पति चुनने का अधिकार था। स्वयंवर में कन्या ही इच्छित वर का चयन करती थी।

परन्तु जब लड़कियाँ जबरन उठाई जाने लगीं तो स्वयंवर प्रथा समाप्त हो गई और बाल विवाह होने लगे। बाल-विवाह हम पर थोपी हुई मजबूरी थी। आप ही सोचें जब तक कन्या मानसिक रूप से परिपक्व न होगी वह अपने पति का चयन कैसे कर पावेगी? युवावस्था में ही स्वयंवर हो सकता है; जबकि वह सयानी हो। स्वयंवर लुप्त हुए। बाल विवाह ने स्थान लिया। जीवन यज्ञ के मीत दिन को छोड़ रात्रि में मिलने लगे। शादियाँ दिन में हो

ही नहीं सकती थीं। रात में छिप के ही सम्भव था कि कहीं कन्या जबरन उठा न ले जावे।

विवाह भारतीय संस्कृति में पवित्र यज्ञ है। नारी को बन्धुआ गुलाम बनाने के लिये नहीं वरन् सम्मान, सुख के लिए ही पति, पत्नी का वरण करता है। संक्षेप में एक चित्र दिखाते हैं। आपको! यज्ञ के सम्मुख; विवाह की पावन बेला में पति अपनी होने वाली वधू से वेद की ऋचाओं में जो कह रहा है उसका संक्षेप भाव 'देवि! मैं तुम्हारा दाम्पत्य हेतु आमन्त्रण करता हूँ। हम में वस्तुतः न तो कोई पति है और न ही पत्नी! क्योंकि उत्पत्ति का कारण न तो तुम जानती हो न मैं ही जानता हूँ। आत्मा और प्रकृति ही पुरुष और नारी होकर सचराचर को उत्पन्न करने को लीला करते हैं। आओ उसी सत्य रूपी लीला का पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) करें। तुम जीव रूपी पत्नी बनो और मैं आत्मा रूपी पति बनूँ। दाम्पत्य धर्म को धर्म पूर्वक, शास्त्र पूर्वक ग्रहण करें। जिस प्रकार प्रभु आत्मा होकर जीव की रक्षा, सेवा सुख का भार वहन करते हैं उसी प्रकार मैं भी प्रतिज्ञा पूर्वक तुम्हें धारण करता हूँ। तुम अपना गाण्डीव (यज्ञोपवीत जिसे दुर्गा यज्ञोपवीत कहते हैं तथा जो विवाह के समय पति को पहनाया जाता है। इस प्रकार उसका यज्ञोपवीत दुहरा हो जाता है) मुझे धारण कराओ। तुम्हारी रक्षा का भार अब मुझ पर है। तुम्हारे लिये युद्ध भी मैं ही लड़ूंगा। इसलिये इस गाण्डीव को मुझे देकर तुम मेरे ऐश्वर्य (गहने, आभूषण सम्पत्ति) को धारण कर मेरे हृदय की स्वामिनी बनो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मायाओं के महासमर में मैं तुम्हें अपने वाम (बाएँ) रखूँगा। दायें हाथ से मैं इस संसार रूपी युद्ध को लड़ूंगा। परन्तु उपलब्धि के क्षणों में पूजा, यज्ञ, मोक्ष तुम मेरे दाएँ रहोगी। पहला अधिकार तुम्हारा होगा। उपरान्त तुम्हारे द्वारा ही मुझको मिलेगा। ''नारी का ऐसा सम्मान विश्व में कहीं न था। गुलामी की जकड़न ने इस महान संस्कृति को भ्रमित कर दिया। धर्म की मूल धाराओं से छूटी संस्कृति के तथाकथित ठेकेदारों ने अनुसंधान और समाज-सुधार के नाम पर इसे और भी अधिक विकृत और घिनौना बना दिया जिससे समाज भटकाव और संकीर्णता को प्राप्त हो गया। काश! वे तथाकथित सुधारक सुधारवाद का नाटक न करके मूलधर्म और उसकी भावनाओं को ही स्पष्ट कर पाए होते।

यज्ञोपवीत गुरूकुल में ही होता था। जो ज्ञानार्जन हेतु जावे; उसे ही यज्ञोपवीत का अधिकार था। बालक और कन्या दोनों को ही शिक्षा का

अधिकार था। गुलामी में कन्याओं का बाहर निकलना बन्द हो जाने से उनका यज्ञोपवीत दुर्गा पर डाल देते थे, जिसे विवाह काल में पति को पहनाने की परम्परा आज भी प्रचलित है।

श्री भगवान वासुदेव गुरूकुल में आए हैं। उनकी भेट श्री सुदामा, तथा गुरूकुल में सहपाठियों से होती है। सचराचर का धारण प्रकट और ज्ञान से पूर्ण करने वाले प्रभु लीलाधारी ज्ञानार्जन हेतु आए हैं। धन्य है सन्दीपनि ऋषि! सहपाठियों के सौभाग्य की सीमा कहाँ है। पेड़-पौधों में नई चमक आई है। प्रभु यहाँ ज्ञानार्जन हेतु उनके पास रहेंगे। लगभग बारह वर्ष का समय बालक का, ज्ञानार्जन का, गुरूकुल का, होता था।

यज्ञोपवीत संस्कार गुरूकुल की पहली परम्परा थी, इसे यह सन्यासी पिछले प्रवचन काल में स्पष्ट कर चुका है तथा इसका विस्तार 'सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि' ग्रन्थ में विशेष है। ('श्रीमद् भगवद्गीता-दिव्य दर्शन' ग्रन्थ में भी इसका विस्तार है। अतः इसे संक्षेप करते हैं। भक्त चाहे तो 'सनातन-सन्देश नामक ग्रन्थ में इसे विस्तार पूर्वक देख लें।) यज्ञोपवीत के तीन सूत्र ही शिक्षा का मूल एवं जीवन का सार हैं। ऋग्वेद ने इनकी भावना को विस्तारपूर्वक गाया।

पहला सूत्र है जीवन के उस सूत्र को जानना, जिसके द्वारा आत्मा ब्रह्म घट-घट वासी हो कर, भस्मी को सुन्दर फलों में लौटाता है। वनस्पति मात्र में नारायण को देखना और उनका भक्त होकर जीना। उनके लिये जीना तथा उनसे अद्वैत कर ब्रह्म के इस सूक्ष्म उत्पत्ति के ज्ञान को धारण करना शिक्षा का पहला उद्देश्य है। ब्रह्मचारी बालक का धर्म है। नित्य नए पेड़ लगाना। निष्काम भाव से उनकी उसी प्रकार सेवा करना, जिस प्रकार पुजारी मन्दिर और मूर्ति की सेवा करता है। प्रत्येक पेड़ और पौधे को प्रभु का मन्दिर जान कर उनकी सेवा करना तथा उनसे प्रेम करना संक्षेप में वनस्पति मात्र का सच्चा भक्त होना।

दूसरा सत्र है प्राणीमात्र को प्रभु का मन्दिर, यज्ञशाला जानकर, एक पूजारी की भावना से, उनकी सेवा करना। प्रत्येक शरीर देवालय है, यज्ञशाला है, वहाँ प्रभु आत्मा होकर आत्मज्वालाओं में यज्ञ करते हैं। तभी तो अन्न-भोजन आदि, बालक की सुन्दर देह के स्वरूप में लौटता है। प्रत्येक जीवधारी में ब्रह्म को देखना पुजारी की भावना से निष्काम भाव से सेवा करना, उनसे प्रेम करना तथा ब्रह्म के सूक्ष्म रहस्य को धारण करना। सृष्टि

के सूक्ष्म सत्य को प्राप्त होना शिक्षा का दूसरा सूत्र था। उत्पत्ति के दूसरे सूत्र को जानना तथा प्रभु के द्वारा प्रकट हो रही सृष्टि को ईश्वरीय भावनाओं से धारण करना सच्च अर्थों में नारायण का भक्त होना।

तीसरा सूत्र है निज देह को आत्मा नारायण का मन्दिर जान कर एक पुजारी की भावना से निमित्त होकर जीना। अर्न्तमुखी हो जीव और आत्मा के द्वैत को योग मार्ग से अद्वैत कर, 'ब्रह्म' द्वारा-देह में हो रही उत्पत्ति के ज्ञान प्राप्त होकर, आवागमन की सीमाओं को तोड़, अनन्त में व्याप्त होना। मनुष्य योनि को प्राप्त होकर भी यदि मैं इस सत्य को न जान पाया तो क्या पशु बनकर जानूंगा? मेरी शिक्षा यदि मुझे पंगु और भिखमंगी अवस्था से सृजक के बहुमूल्य ज्ञान तक न पहुंचा सकी तो उसका सार्थक उद्देश्य क्या है? हर बार डिग्रियाँ बटोरीं! मकान दुकान बनाये! सो गया हर बार चिता की लकड़ियों पर! जब भी लौटा तो भूखा, नंगा, भिखमंगा! मेरा अर्जित ज्ञान भौतिकता सब लुट चुके थे। पुनः अक्षर ज्ञान कर रहा था! यदि मैं पहले पास हो गया था तो तुम्हीं बताओ? पुनः उन्हीं कक्षाओं में मैं दुबारा क्यों पढ़ रहा था ?

दुर्भाग्य से आज शिक्षा से यह सूत्र लुप्त हो गये हैं और शिक्षा का उद्देश्य रह गया है बढ़िया नौकरी अच्छी तनखा और मोटी घूस! आपको मेरी कहानी कैसे समझ में आवेगी ?

तीन सूत्रों के यज्ञोपवीत को गुरू कंठीमाला की तरह न पहना कर धनुषाकार पहनाते थे। क्यों? दस इन्द्रियों के अर्जन से जीव मात्र ही तो अर्जुन हैं। शरीर (देह) ही तो उसका रथ है, और आत्मा कृष्ण ही सारथी है। जो इसे सांस और धड़कन से चला रहे हैं। इस देह रूपी रथ को! जिस पर यह जीव रूपी महारथी आरूढ़ है। यज्ञोपवीत ही तो गाण्डीव है तथा मायाओं का महासमर ही तो महाभारत है। गोविन्द हरि! (कृपया विस्तार सनातन संदेश तथा महाराज श्री के अन्य प्रवचन संग्रहों में देखें।)

भगवान श्रीकृष्ण गुरुकुल में अमृतमय ज्ञान को धारण करते हैं। प्रभु की वहाँ की लीलायें अति सुन्दर अमृतमय ज्ञान को प्रकट करने वाली तथा शिक्षाप्रद है। बरसात की रात में सुदामा द्वारा चनों के प्रश्न को लेकर झूठ बोलना। प्रभु द्वारा नहाते समय सुदामा को माया चरित्र दिखाना! एक से एक विलक्षण सुन्दर तथा अमृतमय प्रसंग हैं। शिक्षा का स्तर, प्रकार, उद्देश्य, मान्यतायें, सिद्धान्त उनकी व्याख्यायें। सचराचर की उत्पत्ति और उनके

रहस्य! जीव और ब्रह्म का मिलन आदि! अति दुर्लभ ज्ञान गुरुकुल में प्राप्त करके श्री भगवान मथुरा लौटकर आते हैं।

आज मथुरा दुल्हिन सी सजी है। भगवान श्रीकृष्ण का राजतिलक जो है। सम्पूर्ण राज्य में हर्षोल्लास है। लोग दान कर रहे हैं। घरों को सजा रहे हैं। नाच, गाने का प्रसंग हर ओर है। अमृत बरस रहा है। श्री भगवान मथुराधीश हुए हैं। महाराज उग्रसेन वानप्रस्थ को प्राप्त हुए हैं। कितने महान थे वे लोग! आज आप दीवारों की खातिर पिता को मार कर भगा देंगे। आह! महान संस्कृति के महान लोगों के आधुनिक वंशज, कहाँ चल दिये हैं।

उद्धव, मथुराधीश भगवान श्रीकृष्ण के अंतरंग सखा एवं सलाहकार हैं। अति विद्वान, तपस्वी एवं मननशील हैं। मथुराधीश उन्हें अति सन्मान देते हैं। श्री बलराम भी राज्य के कार्यभार में हाथ बंटाते हैं। मथुराधीश फिर भी उदास हैं। एकान्त के क्षणों में उनके नेत्र छलछला उठते हैं। यह बात उद्धव जी से छिपी नहीं रहती है। विवाह आदि में उनकी कोई रुचि नही है। ब्रम्हचर्य व्रती होकर जीने की उनकी इच्छा है। बहुत बार अधीनस्थ राजाओं एवं मित्रों ने उन्हें समझाने की कोशिश की, परन्तु वासुदेव कुछ सुनना नहीं चाहते हैं। हमेशा बात टाल जाते हैं। मथुराधीश होकर भी एक योगी तपस्वी सा जीवन है उनका। शिकार आदि में भी उनकी कतई रुचि नहीं है। उनके जितने भी अंतरंग मित्र हैं सभी उच्च कोटि के विद्वान एवं तपस्वी हैं। सलाहकारों में भी बाहुल्य उनका ही है। ब्रह्म ज्ञानी, ऋषि, साधू निरन्तर मथुरा आते रहते हैं। अधिक समय वासुदेव का उन्ही की सेवा में बीतता है। एकान्त के क्षणों में खोयी आँखों में से अनायास अनजाने ही आँसुओं की लड़ियाँ प्रकट हो जाती हैं। जो उद्धव को तथा अन्य मित्रों को व्यथित कर देती हैं। उसका कारण जानने के भी उन्होंने बहुत प्रयास किये परन्तु निरस्त करने वाली एक उदास फीकी मुस्कान वासुदेव की, उन्हें मौन कर देती है। मथुरा का सुख, वैभव आनन्द वासुदेव को छू भी नहीं पाता है। दिन में व्यस्त रहते हैं परन्तु सुबह और शाम न जाने क्यों उदास हो उठते हैं। रहस्य किसी को बताते नहीं हैं। अत्यन्त संकोची हैं। एक बार एकान्त पाकर उद्धव जिद्द ठान कर उनके सामने बैठ जाते हैं।

'वासुदेव! मुझे बताओ तुम्हारी उदासी का कारण क्या है? मैंने तुम्हारी आँखों में बहुत बार आँसुओं की झड़ियाँ देखी हैं। कृष्ण! आज तुम्हे बताना

ही होगा।

'उद्धव! मैं क्या करूं! बृज मुझे विसरता ही नहीं है। वे पवित्र गोपियाँ! उन्मुक्त वातावरण! निश्छल पवित्र प्रेम! करील के कुंजसं कसे लिपटती, चूमती, अल्हड़ शोर करती, खनकती, हवाओं के झोंके सांझ के साथ लौटती गायों के खुरों की संगीतमयी आवाज। उनके गले की घंटियों की गुन-गुन! उस में आलौकिक रस घोलता पक्षियों का कलरव। कान्हा! कान्हा!! पुकारते गोप-गोपियों के समूह! विषय, वासना और छल कपट से सर्वथा अनभिज्ञ, उन्मुक्त, निश्छल, पवित्र चेहरे! उद्धव!! फिर फिर आकर मेरे सामने खड़े हो जाते हैं। मुझे देखकर हँसते हैं और दूसरे ही क्षण उदास हो उठते हैं। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारे बहने लगती हैं। मेरे कानों में अनायास उनकी फुसफुसा की आवाजें आने लगती हैं। तू शीघ्र आने का वायदा करके गया था। अब हमें भूल गया है। तेरी ही प्रतीक्षा में जीवित हैं। तू न कह दे। हम तत्क्षण शरीर त्याग दें। तेरे बिना हम जी नहीं पा रहे हैं गोपाल।............................"

प्रभु का गला अवरुद्ध हो गया है। नेत्रों से जल की धाराएं चेहरे को धोकर वस्त्रों से लुड़कती चरण धोने लगी हैं। उद्धव स्तब्ध हैं। अनजाने में झरोखा खोल बैठे! उन्हें क्या पता था कि तूफान इतना भयंकर है।।

'ऊधव वृज मोहे बिसरत नाहीं।''

'उद्धव जब श्री राधा गाँव में नव-बधू बन कर आई थीं तब मैं तीन वर्ष का था। श्री राधा ने मुझे असीम प्यार दिया है। मैं उसकी गोद में खेला हूँ। उसके साथ मेरे अतीत के सुखद क्षण पिरोये हुए हैं। मेरी विरह में उनका जीवन असह्य बोझ बन गया है। उस महान पवित्र तपस्विनी को मैं एक क्षण भी तो नहीं भुला पाता हूँ। निष्पाप नन्द बाबा और पवित्र यशोदा माँ के श्री चरणों में मेरा मन निरन्तर भटकता है। वहाँ की माखन मिसरी का आनन्द मुझे मथुरा के पकवानों में नहीं है। वैसा निश्छल स्नेह और आत्मीय भाव मुझे यहाँ नहीं मिलता है।

''वासुदेव! आप कैसी बातें कर रहे हैं। जीवन के अमूल्य क्षणों को, कोरी सांसारिकता में नष्ट करना, आपके जैसे विद्वान परम ज्ञानी परम तपस्वी को शोभा नहीं देता है।''

''कैसे कहा उद्धव ?'' प्रभु ने आश्चर्य से पूछा।

''मथुराधीश! आप वेद-वेदांतों के परम ज्ञानी हैं। महर्षि सान्दीपनि के

सभी शिष्यों में आप सिरमौर हैं। अतीत की स्मृति में, फूहड़ गँवार गोपियों की खातिर दुःखी होना विचलित रहना! जीवन के अमूल्य, अमृतमय क्षणों को दुःख पीढ़ा में नष्ट करना। परम् ब्रह्म की भक्ति को त्याग कर, भौतिक सुखों की स्मृति में समय नष्ट करना, आपको कदापि शोभा नहीं देता।'' उद्धव ने समझाते हुए कहा।।

उद्धव! तुम्हारा कथन उचित लग रहा है। कुछ और कहो।।

"कृष्ण यह संसार तो क्षण भंगुर है। स्वप्न की नाई है। इसमें जो भी सत्य है सो निराकार अविनाशी ब्रह्म है। सम्पूर्ण गतियों के देने वाला - भी प्रत्येक गति में स्थिर है। सचराचर को धारण, सृजन, संहार और पुनः प्रकट करने वाला है। निराकार परम ब्रम्ह ही मात्र शक्ति है। सम्पूर्ण लोक, कालादिक उसके ही आधीन हैं। आत्मा होकर परम ब्रह्म ही घट-घट वासी होकर जड़त्व को चेतना और जीवन प्रदान करने वाला है। परम् ब्रह्म ही अभीष्ट सिद्धियों को देने वाला है। परम् ब्रह्म ही जीवन का सार है। जीव मात्र का लक्ष्य भी वही है। परम ब्रह्म की तपस्या, साधना और भक्ति मनुष्य मात्र का इकलौता लक्ष्य है। ऐसे परम लक्ष्य को त्याग कर गंवार गोपियों की भक्ति करना, उनके ही ध्यान में लीन रहना कहाँ तक उचित है!'' उद्धव ने कहा।

"उद्धव! तुम्हारी बातें समझ में तो आती है परन्तु मेरी मन स्थिति को बदल नहीं पा रहीं हैं। उद्धव मुझे गोपियों ने विवश कर रखा है। यदि वे मेरा ध्यान करना छोड़ दें। मेरे प्रति इन भावों का परित्याग कर दें; तभी मैं स्वस्थ होकर तुम्हारे मार्ग का अनुसरण कर सकता हूँ। मुझे भी लगता ही नहीं वरन पूर्ण विश्वास है कि जो तुम कह रहे सो वही सत्य है परन्तु क्या करूं। जब गोपियाँ मेरे ध्यान में रोती हैं तो मेरे आँसू अनायास निकल पड़ते हैं। उनकी भक्ति भावनायें मुझे मजबूर कर देती हैं। प्रभु ने बड़े ही भोलेपन से अपनी विवशता उद्धव के सामने सकुचाते हुये रखी।

वासुदेव! इस समस्या का समाधान तो करना ही होगा। जीवन के अमूल्य क्षणों को इस प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता।

"उद्धव। इसका समाधान तुम्हीं कर सकते हो। तुम विद्वान हो। ज्ञानी हो। तपस्वी हो! परम ब्रह्म के मर्म को जानने वाले हो। तुम जाकर गोपियों को परम ब्रह्म की साधना का उपदेश करो। जब वे मेरा ध्यान त्याग कर परम ब्रह्म की भक्ति में लग जावेंगी तो मैं भी स्वस्थ होकर तुम्हारे बताये मार्ग

का अनुसरण करूँगा।"

ऐसा ही होगा वासुदेव! मैं आज ही प्रस्थान करूंगा।" उद्धव ने कहा।

-उद्धव मेरी एक प्रार्थना का विशेष ध्यान रखना! मैं उन गोपियों की गोद में खेला हूँ। नन्द और यशोदा मेरे माता पिता ही हैं। श्री राधा जी को मैंने सदा प्रणाम किया है। गोपियों की गोद में सोया हूँ उनके चरणों में लोटा हूँ। कहीं ऐसा कुछ न कह देना कि उनको कष्ट हो। मित्र! नन्द यशुमति को प्रणाम करना, श्री राधा जी को जयकार देना! मैं उन सबका ऋणी हूँ! माखन मिसरी का कर्ज उतार नहीं पाया हूँ। प्रभु उद्धव को नाना प्रकार से समझाते हैं।

"ऐसा ही होगा वासुदेव।"

"उद्धव! वे गोपियाँ बहुत संकोची हैं। पराये पुरुष से बात नहीं करती हैं। वे तुमसे भी बात नहीं करेंगी। मेरा पीताम्बर ले जाओ। उसे अपने कंधे पर रखे रहना। तभी वे तुमसे बात करेंगी।"

"ऐसा ही करूंगा वासुदेव! तुम्हारा ऋण भी उतार दूंगा।"

उद्धव नाना वस्त्राभूषण रथ में रखकर बृज की ओर चल देते हैं। मथुराधीश उन्हें विदाई देते हैं। मथुराधीश के मना करने पर भी उद्धव ने रत्न और कीमती वस्त्र रथ में रख लिये हैं। माखन-मिसरी का कर्जा जो उतारना है। उनको! निष्पाप निर्मल उद्धव जी बृज की ओर जा रहे हैं! गोविन्द हरि!

बृज में उद्धव आये हैं! कान्हा के परम मित्र हैं। उनके कन्धे पर कन्हैया का पीताम्बर है। नन्द के द्वार भीड़ उमड़ पड़ी है। गोप और गोपियों के समूह नन्द का द्वार घेर कर खड़े हैं। उद्धव जी, नन्द और यशोदा जी के साथ बाहर निकल कर आये हैं। सबका अभिवादन करते हैं। तभी उनकी दृष्टि कृशकाय परम तेजस्विनी देवी पर पड़ती है। सूर्य के जैसा दमकता हुआ। तेजस्वी स्वरूप जिसे देखते ही उसके चरणों में बिछ जाने का मन करता है। उद्धव देखते ही जान गये हैं कि वे श्री राधा जी ही हैं! उद्धव अनजाने ही उनके चरणों में बिछ जाते हैं।

वे सब उद्धव जी से श्री भगवान का कुशन क्षेम पूछती हैं। उद्धव उन्हें सब कुछ बताते हैं। मथुराधीश की मनःस्थिति का परिचय देते हैं। उनको कृष्ण भक्ति का परित्याग कर परम ब्रह्म की उपासना का उपदेश करते हैं। श्री राधा जी उनसे पूछती हैं :-

"उद्धव! परम् ब्रह्म रहते कहाँ है?"

"परं ब्रह्म घट-घट वासी हैं। सभी में रहते हैं।"

"उद्धव! क्या परम् ब्रह्म मथुराधीश की देह में भी रहते हैं।"

" हाँ! वह मुझमें भी हैं! तुम में भी हैं सबमें हैं।"

"क्या? वह इन फूहड़ गँवार गोपियों में भी रहते हैं?"

"हाँ! परं ब्रह्म सभी में विराजते हैं।" उद्धव ने उत्तर दिया।

''उद्धव जी! तुमको परं ब्रह्म की ही सौगन्ध! सच बताओ तुमने किसी में परम् ब्रह्म देखा? हम में फूड़ह गॅवार गोपियाँ ही तो देखीं। मथुराधीश में मथुराधीश ही तो देखा! तुमने परं ब्रह्म को किसमें देखा? हम मथुराधीश में परं ब्रह्म की उपासना करती हैं। हमने वासुदेव को सब में देखा है। सब कहीं देखा है! रे उद्धव! यदि हम मथुराधीश की उपासक होतीं और हमारा प्यार भौतिक मिथ्यावाद होता तो तुम्हीं बताओ मथुरा से बृन्दावन पाँच मील (दो कोस) ही तो है। क्या हम उनसे मिलने न जातीं? प्रतिदिन गोपियां मथुरा में दही और मक्खन बेचने जाती हैं। परन्तु मथुराधीश से मिलने नहीं जाती! क्यों? उन्हें घर लौटने की जल्दी है! कन्हैया राह देखता होगा! उद्धव! क्या यह परम् ब्रह्म की उपासना नहीं है? उद्धव! तुझे परम् ब्रह्म की। सौगन्ध! बता हमको! परम् ब्रह्म की कभी तूने भावना करके आचरण और व्यवहार भी किया है? किसमें देखा परम ब्रह्म तूने?''

निष्पाप उद्धव स्तब्ध हैं। अर्न्तमन भीषण तूफान के थपेड़ों में दहलाया। हुआ है। रे उद्धव! तूने परम् ब्रह्म देखा किसमें है। कितना नग्न सत्य! तू उसे जान न पाया! (रे उधो! रे उधो!!'' उद्धव विचारों के झंझावत में स्वयं से झूलने लगा है। आह! कभी इस सत्य का आभास तक न हुआ। यदि मैंने परम ब्रह्म को घट-घट वासी माना तो देखा क्यों नहीं? सबमें सब देखा। एक परम् ब्रह्म ही तो नहीं देखा! क्या परम् ब्रह्म में मेरी आस्था थी? उद्धव उत्तर दे स्वयं को? ज्ञान के भण्डारी! दुनिया को ब्रह्म के रहस्य बताने वाले तूने जगती को ब्रम्हमय जानकर कब आचरण और व्यवहार किया?

राधे!राधे!! तु कौन है। सत्य का इतना स्पष्ट साक्षात्कार तो मुझे वेद भी न करा पाये। हे देवि! तेरे श्री चरणों में कोटि कोटि प्रणाम है। ज्ञानांध मानता फिरा कि मैं परब्रह्म का उपासक हूँ। कन्दराओं की लम्बी समाधियों में, घने बनों में, मौन चिन्तन के क्षणों में भी तो रे ऊधो! अपनी वस्तुस्थिति को भाँप न पाया था।

एक क्षण में सत्य सम्मुख खड़ा करने वाली। हे देवि! तू कौन है? रे उधो! तूने यदि परब्रह्म को घट-घटवासी माना था तो सबमें वही है ऐसा मानकर आचरण क्यों नही किया? उद्धव जी मौन स्तब्ध हैं। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित है। "कितना बड़ा धोखा मैं स्वयं को दे रहा था! हे तेजस्विनी देवी तेरा साक्षात्कार ही आज उस भ्रम जाल को तोड़ सका। आज जीवन में पहली बार मैं तुझमें; वासुदेव में, सबमें परं ब्रम्ह को देख पा रहा हूं! तेरे चरणों में बारम्बार प्रणाम है।" उद्धव जी के नेत्र मुन्दे हुये हैं। भीत के सहारे बैठे हैं। विचारों के भीषण तूफान उनके मस्तिष्क हृदय और सम्पूर्ण ज्ञान को मथे जा रहे हैं। नेत्रों से अश्रुजलधारा निरन्तर प्रवाहित है!

नन्द जी कहते हैं; उद्धव मैं परं ब्रह्म तो जानता नहीं। अभी देखा था। कन्हैया गौओं की सेवा में लगा हुआ था। मैंने कहा लाला थक गये होगे। थोड़ा आराम कर लो। माना नही दूसरी गाय के पास जाकर सहलाने लगा। यशोदा जी कहती हैं उद्धव जो हर क्षण आँखों के सामने रहता है मेरा तो वही परं ब्रम्ह है। अभी गोद में बिठाकर माखन मिसरी खिलाकर आ रही हूँ। चल के देख ले पालने में सो रहा है। गोपियाँ कहती हैं उन्हें पेड़ों पर बैठा बाँसुरी बजाता मिलता है। गायों के पीछे भागता हुआ दिखाई पड़ता है। रात्रि की नीरवता को चीरती उसकी बांसुरी की मधुर तान सुनाई देती है। एक गोपी कहती है कि वह जब आ रही थी तो उसने देखा कि लाला पेड़ पर बैठा बाँसुरी बजा रहा है। वह उसको पकड़ने के लिये दौड़ी। लाला लोप हो गया। कहीं छिप गया। पेड़ का तना ही बेचारी की बाँहों में आया। तब वह बहुत रोई। बहुत रोई!

उद्धव! यह कैसी लीला है। नन्द उसे गायों की सेवा में देखता है। वही नन्द प्रतिमाह कर चुकाने मथुरा जाता है। भण्डारी को ही सामान देकर लौट जाता है। वासुदेव से मिलने का प्रयास भी नहीं करता? उद्धव को लगता है यहाँ की माटी के हर कण में कृष्ण रूप में परंब्रह्म, प्रकट होकर मुस्करा रहा है। श्री राधा जी कह रही हैं :-

"उद्धव जी! जिस पर ब्रह्म को आप सिद्ध करना चाहते है आप उसमे सिद्ध क्यों नहीं हो जाते हैं।"

क्या बात कही है राधे तुमने! उद्धव भीतर-बाहर झंकृत हो गया है। उसे लगता है वह किसी दूसरे ज्योतिर्मय धरातल पर उतर आया है। चारो ओर चकाचौंध करने वाला प्रकाश है। उद्धव को अपनी देह से भी प्रकाश दिव्य

किरणें प्रस्फुटित होती दिखती हैं। उन्हीं किरणों के ज्योतिर्मय समूहों में उद्धव स्वयं से कह रहा है, इस ज्योति को सिद्ध क्यों करना चाहता है। उद्धव कहाँ रखेगा इसे! तू स्वयं भी तो क्षणभंगुर है। ज्योति नित्य है। क्यों नहीं अपने स्वरूप को ज्योति में ही व्याप्त कर अनन्त हो जाता!!! राधा! राधा!! क्या कहा था तुमने! जिस परंब्रह्म को सिद्ध करना चाहते हो उसमें स्वयं को ही क्यों नहीं सिद्ध (व्याप्त) कर देते? राधे! तुम्हारी जय हो! इन सहस्त्र गोपियों में मैं आज तुम्हारी और कृष्ण की युगल जोड़ी को ही देखता हूँ।"

उद्धव जी की विचित्र अवस्था है। उद्धव आज, उद्धव को ही नहीं खोज पा रहा है। उद्धव सोचता है; उद्धव कहीं खो गया है। उद्धव गोपियों के चरणों में लोट लोट जाता है। भोली गोपियां डरी, सहमी, राधा जी की ओर देखती हैं। मानो पूछ रही हों इन्हें क्या हो गया है। अभी तो भले चंगे थे।

राधा जी की निगाहें रथ पर रखे वस्त्राभूषण पर पड़ती हैं तो वे चौंक उठती हैं।

"उद्धव! यह वस्त्र और कीमती आभूषण तुम क्यों लाये हो?"

उद्धव मौन हैं। अपराधी की भाँति सिर झुका लेते हैं। राधा जी पुनः कह रही हैं :-

"उद्धव! मथुराधीश की हिम्मत नहीं जो हमको गहने और वस्त्र भेजें। उद्धव! अवश्य तुम अपने मन से लाये हो। यह काँच के टुकड़े हमारे माखन मिसरी का ऋण नहीं उतार सकते। वासुदेव से कह देना, सहस्त्र युगों में भी तुम हमारा कर्जा उतार न पाओगे। सदा हमारे ही कर्जदार रहोगे।" फिर व गोपियों की ओर पलटती हैं, "सखियों रथ में माखन मिसरी लाकर भर दो। उद्धव! उनसे कहना नया ऋण और दिया है।"

उद्धव अपराधी से सिर नवाये हैं। कुछ कहने की उनमें हिम्मत ही नहीं है। गोविन्द हरि।।

कथा का समापन करते हैं। उद्धव जी लौटकर मथुरा आते हैं। वासुदेव उनसे बृज का कुशल क्षेम पूछते हैं तो उद्धव के नेत्रों से अश्रु-जल धारा प्रवाहित हो उठती है। कृष्ण कहते हैं, उद्धव तू तो उन्हें सुधारने गया था। लगता है। तुझे भी यह बीमारी लग गई। उद्धव भगवान के चरणों से लिपट जाते हैं। वासुदेव! मेरे अपराध क्षमा करो! मैंने आपको पहचाना नहीं! भगवान भोलेपन से पूछते हैं कैसे अपराध उद्धव? कथा तो बहुत लम्बी है!

फिर सुनायेंगे कभी! तभी सुनायेंगे जब आप प्यास जगाकर आयेंगे! छिद्रान्वेषी, पूर्वाग्रहों से ग्रसित अभागे जन कथा के मर्म को कभी प्राप्त नहीं हो सकते। वे दया एवं सहानुभूति के पात्र हैं।

कंस की हत्या के उपरान्त उसकी दोनों पत्नियाँ अस्ति और प्राप्ति अपने पिता जरासन्ध के यहाँ चली गई। जरासन्ध जब भी अपनी पुत्रियों के वैधव्य स्वरूप को देखा तो उसका मन प्रतिशोध की ज्वाला से धधक उठता। उसने सुना कृष्ण मथुराधीश हुये हैं तो उसने मथुरा पर आक्रमण कर दिया। श्रीकृष्ण और श्री बलराम के नेतृत्व में यादव सेना जमकर लड़ी और जरासन्ध को निराश वापिस लौटना पड़ा। एक के बाद एक, शक्तिशाली भयंकर आक्रमण जरासन्ध ने किये परन्तु मथुरा को जीत न पाया। उसके सत्तरह बार के आक्रमण विफल हुये। अट्ठारहवीं बार अपने मित्र काल यवन को लेकर उसने मथुरा पर आक्रमण करने की ठानी। एक ओर से कालयवन और दूसरी ओर से भारी सेना लेकर जरासन्ध चल दिया। दोनों ओर से व्यूहाकार चतुरंगिणी सेनाओं के बढ़ते सागर की सूचना निरन्तर मथुराधीश को मिल रही थी। मथुरा जैसे छोटे स्थान पर युद्ध लड़ना सम्भव नहीं था। इससे पूर्व ही, सागर किनारे सौराष्ट्र में वासुदेव ने नये राज्य की स्थापना का कार्य भी शुरू कर दिया था। असुर लुटेरों से निरीह लोगों की रक्षा हेतु ही, द्वारिकाओं का निर्माण किया गया था। यह द्वारिकायें पूरे सौराष्ट्र प्रदेश में फैली हुयी थीं।

दोनों सेनाओं से एक साथ लड़ना सम्भव नहीं है। श्रीकृष्ण ने युद्ध की नई व्यूह रचना तत्क्षण सोच ली। उन्होंने जो प्रजाजन द्वारिका बसना चाहते थे, उन्हें द्वारिका भेजने की व्यवस्था करवा दी तथा आक्रमण से पूर्व ही मथुरा को खाली करने का आदेश जारी कर दिया। जिससे असुर सेनाये निरीह को न मारे तथा गुलाम न बनावें। श्री बलराम एवं श्रीकृष्ण कालयवन से लिये मथुरा छोड़कर चल दिये। जिस ओर से कालयवन की सेनायें आ रहीं थीं उसी ओर यादव सेनायें आगे बढ़ने लगीं। मार्ग में ही दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध छिड़ गया। इसकी आशंका कालयवन को नहीं थी। उसकी सेनाये लड़ने के लिये तैयार भी नहीं थीं। उसके सैनिक गाजर मूली की तरह कटने लगे। श्रीकृष्ण ने लीला की! मुचुकुन्द ऋषि के हाथों कालयवन मारा गया।

उधर वीरान मथुरा में जरासन्ध की सेनायें भटक रहीं थीं। जब उन्हें

पता चला कि कृष्ण और बलराम ने मार्ग में ही कालयवन पर भयंकर आक्रमण कर दिया है तथा वह बुरी तरह घिर गया है। जरासन्ध शीघ्रता से सेना लेकर उसकी मदद को आगे बढ़ा। मथुरा को जलाकर भस्म करने की उसकी इच्छा भी पूरी न हो सकी। जरासन्ध की सेनाओं के पहुंचने से पूर्व ही यादव सेनायं, द्वारिका की ओर कूच कर चुकी थीं। उसने बहुत दूर तक पीछा किया। परन्तु श्रीकृष्ण और बलराम प्रवर्षण पर्वत पार करके जा चुके थे। राह के जंगलों में भयंकर आग लगी हुई थी। जरासन्ध हाथ मलता लौट गया। प्रभु द्वारिकाधीश सुशोभित हुये।

सुर और असुर की चर्चा हम प्रवचन में निरन्तर सुनते आये हैं। श्रीकृष्ण सुर नायक हैं। जरासन्ध, कालयवन और दन्तवक्र असुर राज हैं। दोनों ही भक्त हैं। भगवान की पूजा करने वाले हैं। दोनों ही ईश्वर से वरद होते हैं। दोनों में भेद क्या है ?

एक ही प्रभु के उपासक, दो क्यों हो गये। इसका कारण उनकी ईश्वर भक्ति नहीं, वरन जीवन के मूल उद्देश्यों को लेकर हुआ। दोनों मित्र भी थे। स्वजन भी थे। श्वसुर दामाद भी थे। एक घर में भी रहे। मतभेद विचारों का था, मान्यताओं का था।

असुर ने कहा, "परम पिता परमेश्वर ने पुरुष को आनन्द भोग हेतु भेजा है। धरती पर उसने जो कुछ भी बनाया है पुरुष की भोगेच्छा हेतु ही बनाया है। स्त्री भी भोग्या हैं। श्री मान् पुरुष जो असुर विचारों के उपासक है वे ही परम पिता परमेश्वर के प्रिय पुत्र हैं। उन्हें संसार को मनचाहा भोगने का पूर्ण अधिकार है। नारी भी अन्य सम्पत्ति के समान है। पुरुष की भोग्या है। पुरुष व प्रकार चाहे उसका भोग करे। माँ, बहन और पत्नी होकर भी उसका अधिकार पुरुष के बराबर कदापि नहीं हो सकता। वह तो मिट्टी के खेत के समान है। पुरुष जो चाहे बीजे। जैसे चाहे जोते। नारी पुरुष की सम्पत्ति है। वह उसे बेच सकता है। दान कर सकता है। परमेश्वर ने पुरुष के खाने के लिए ही पशु, पक्षी, पेड़, पौधे बनाये हैं। उनको मार कर खाने हेतु ही उनको बनाया गया है। मांस, मदिरा का सेवन धर्म सम्मत है।"

यह (संक्षेप में) विचार थे असुर के, उसके सन्त और सन्यासी पानी के घड़ों को छूते थे तो वह पवित्र शराब हो जाती थी। जल की नदी की ओर देखते थे तो उनके तपोबल से सारी नदी पवित्र शराब बन जाती थी और उनके उपासक उसे भक्ति पूर्वक पीते थे। दूसरों को लूटना, गुलाम बनाकर

बेचना, औरतों को वेश्या बनाकर बेचना तथा वेश्यालयों को बनाना, उनका धर्म सम्मत अधिकार था। निरीह, असहाय, दीन स्त्री पुरुषों को बलपूर्वक पकड़वा कर, उनसे बड़े भवन बनवाना। विषय भोग हेतु बालकों एवं कन्याओं को सताना, कुकर्म करना सब कुछ उनके धर्म का अंग था। उनको बेचकर धन एकत्र करना, कोई बुरा काम नहीं था।

सुर ने कहा यह सब महापाप है। पुरुष ईश्वर ही की भाँति प्राणीमात्र की सेवा के लिये यहाँ भेजा गया है। प्रभु ने जो सचराचर रूपी बगिया बनाई है। पुरुष उसका माली है। प्राणीमात्र की निष्काम सेवा, जब प्रभु स्वयं आत्मा होकर, घट-घट वासी होकर कर रहे हैं! तो पुरुष का धर्म ईश्वर ही की भाँति प्राणीमात्र की निष्काम सेवा करना है। भक्त, भगवान से भी महान है। उसी प्रकार नारी का स्थान पुरुष से ऊपर है। अधिक विस्तार नहीं कर रहे हैं। समय बहुत ही कम रह गया है तथा सुर विचारधारा ही नारायण की लीला है।

अब एक बात बताओ? तुम्हारा एक ही कमरे का मकान हो। तो उसमें बैठकर व्यभिचार करना चाहो, तो अपने माता-पिता को पहले वहाँ से, हटाना होगा न! उनके सामने तो सम्भोग नहीं कर सकते! इसीलिये असूर ने कहा कि परम पिता परमेश्वर मेरे शरीर में नहीं हैं। 'अ' + 'सुर'। अर्थात मैं 'सुर' (देवता, ईश्वर) से रहित ('अ') हूँ। देव मेरी देह से परे हैं अन्यत्र कहीं है। मेरा शरीर रूपी घर मेरे अभिभावक से खाली है।

मैं आजाद हूँ।

सुर ने कहा कि सुर (देव, ईश्वर) मुझमें है। मैं उनसे दूर नहीं हूँ। उससे संयुक्त हूँ। उसी में व्याप्त हूँ। उससे हटकर मेरे जीवन का कोई क्षण नहीं है। इस प्रकार वह 'सुर' कहलाया। दूसरा 'असुर' कहाया।

असुर ने नारी को भोग्या, गुलामी सम्पति और वेश्यावृत्ति दी। सूर ने। उसे पुरुष के ऊपर अधिकार देकर नवदुर्गा के रूप में उसकी पूजा करवाई।

कृष्ण सुर नायक हैं। वृत्रासुर, भौमासुर, बाणासुर आदि असुर राज हैं। निरन्तर युद्ध में पुरुषों की कमी के कारण नारी के साथ अन्याय न हो इसीलिये सुर उपासकों को मजबूर होकर बहु पत्नी प्रथा की शरण लेनी पड़ी। उसमें भी स्वयंवर का अधिकार नारी को ही दिया गया। इसका दूसरा कारण यह भी था कि निराश्रित कन्याओं को पकड़कर असुर बेच देते थे। इसीलिये सुर विचारधारा ने नारी को पूर्ण संरक्षण प्रदान करने के लिये,

उनकी रक्षा हेतु तथा वे सन्तति को भी प्राप्त हों। सन्तान का अभाव नारी के लिये कितना पीड़ादायक होता है, यह तो सर्वविदित है। मात्र इन्ही कारणों से बहुपत्नी प्रथा थी। उस काल की मजबूरी थी। अकेले भौमासुर के यहाँ से श्रीकृष्ण ने चौंसठ हजार बन्दी कन्याओं को छुड़ाया था।

द्वारिकाओं का संक्षेप रहस्य बताते हैं आपको। सम्पूर्ण सौराष्ट्र प्रान्त में, सागर के किनारे द्वारिकायें बनाई गई थीं। जहाँ यादव सरदार सागर पर निगाहें, गड़ाये चौकस रहते थे। असुर जहाजी बेड़े निरीह बालकों कन्याओं को बन्दी बनाकर बेचने हेतु आगे बढ़ते। द्वारिका से द्वारिका तक घोड़ों पर सूचनायें दौड़ने लगतीं। धीरे-धीरे असुर बेड़ों को यादव सरदार अपने बेड़ों से चहुँ ओर घेरते चलते और फिर सागर में घेर कर, असुरों को परास्त कर, उन बन्दियों को छुड़ाते। वासुदेव उन्हें गीता का ज्ञान देते। जीने के सहारे देते। समाज में उन्हें सम्मानित कराते थे। क्या? मेरे प्रभु, दीन-बन्धु, अनाथों के नाथ! ईश्वर से कही कम थे? बोलो!

वासुदेव की द्वारिकाओं का आतंक असुर राजाओं के लिए असह्य हो उठा। भौमासुर बन्दी कन्याओं को इसी डर से बेच नहीं पाया था कि राह में कृष्ण लुटेरा जो बैठा है। मूल द्वारिका तीन नदियों के किनारे बसी हुई थी। उनके नाम थे "देविका" "हिरण्या" और सरस्वती। "देविका" के किनारे समाधिस्थ कृष्ण को बाण लगा था। उसकी लीला ही सारे रहस्यों को स्पष्ट करने वाली है।

सौराष्ट्र के काठी वस्तुतः मूल यादव हैं। जो श्री भगवान के साथ द्वारिकाओं में आकर बसे थे तथा जिनके शौर्य और बल से वासुदेव भारत की अबोध कन्याओं एवं निरपराध बन्दियों को असुरों के चंगुल से बचा सकें।

द्वारिकाओं की कथा के साथ भास्कर भाई का नाम जुड़ा हुआ है। उन्होने कहा चलिए आपको द्वारिका ले चलें, और चल दिए हम! भास्कर भाई धन्य है।

द्वारिकाएँ! भेट द्वारिका, द्वारिका से सागर के किनारे भावनगर तक फैली हुई थी। एक बार फिर अपने साथियों के साथ घूम रहे थे हम लोग! अतीत के आवरण फटते जा रहे थे! प्यारे! काठी चेहरे! आज भी उन्हीं वस्त्रों में! उन्हीं भावों में घूम रहे थे। लगता था जैसे समय ने कुछ भी तो नहीं बदला है। गोपियों की भाँति सजी काठी नारियाँ गोपों से सजे काठी! आज भी उतने ही सरल, सहज, और पवित्र हैं। आज भी वे "माई 'बापा",

(गाय और बैल) का घर बनाते हैं उसी में 'माई', 'बापा', के चरणों में ही रहते
हैं। बाँसुरी लिये दूर तक गायों को चराने जाते हैं। मस्त उन्मुक्त, नरनारी
नाचते हैं। उनके चरित्र की पवित्रता वहीं जाकर देखी जा सकती है। नारी
अकेली चाहे जहाँ जा सकती है कोई पर-पुरुष उसकी ओर कुदृष्टि नहीं
डाल सकता। यदि उसने ऐसा किया तो निश्चित रूप से मृत्यु का वरण
करेगा। उसका हत्यारा स्वयं अदालत के सामने खड़ा होकर अपने अपराध
को स्वीकारेगा। झूठ नहीं बोलेगा वह! वकील का क्या काम?।

'माई' 'बापा' को डण्डा मारना तो दूर, कोई गाली भी नहीं दे सकता!
उनके माई (गाय) बापा (बैल) दर्शनीय हैं। ऐसे स्वस्थ पशु आपको सारे
भारत में नहीं मिलेंगे। पति पत्नी अपने छोटे बच्चे को 'माई' 'बापा' को
सौंपकर स्वयं खेत पर काम करने चले जाते हैं। उस ददश्य की कल्पना ही
अति मधुर है। चारपाई पर छोटा सा शिशु सोया हुआ है। उसके एक ओर
माई (गाय) बैठी है और दूसरी ओर बापा (बैल)! दोनों पागुर कर रहे हैं।
यदि बालक चारपाई से गिरने को होता है तो थूथन से फिर चारपाई के मध्य
में ढकेल देते हैं। वासुदेव की लीला के छह हजार वर्ष बाद।

बालक ग्यारह वर्ष का हुआ नहीं कि गुरुकुल में भेज दिया जाता है।

आज भी शिक्षा का स्वरूप उतना पुराना ही है। एक क्षण भी तो समय
के अन्तराल छू नहीं जाते हैं। पता नहीं समय सारे दृश्यों को किसके लिये
ज्यों का त्यों सजाये है। कुछ भी तो बदला नहीं है। किसका इन्तजार है ?

वेरावल और पोरबन्दर पर आने पर बहुत कुछ बदलाव और पुरानापन
लिये स्वागत करता मिला।

देविका के किनारे पहुँच कर जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य हुआ! थोड़ी
देर तक तो विश्वास ही न हुआ। एक पेड़! उतना ही झुका हुआ! देविका
उतनी ही मौन! स्तब्ध! घाट भी वैसा ही! पेड़ सौ वर्ष से अधिक पुराना
नहीं। घटनाक्रम छह हजार वर्ष पुराना है! प्रकृति क्यों उस दृश्य को आज
भी वैसा ही सजाये है। यहीं पर तो वेद व्यास का सुर नायक बाण खाकर सो
गया था। यहीं आकर ही तो वेद व्यास ने अपनी अन्तिम लीला का समापन
किया था। एक नायक इतिहास का! दूसरा नायक घट-घट वासी अध्यात्म
का! दोनों एक होकर कथा में चले! एक ही स्थान पर एक साथ बाण-लीला
पर समापन को प्राप्त हुये। फिर सम्पूर्ण महाभारत और भागवत के रहस्य
खुले! संक्षेप में सुनाते हैं बाण-लीला!

तीन नदियों के किनारे बसी द्वारिका! 'देविकों' हिरण्या और 'सरस्वती'। द्वारिका के दोनों ओर सागर के किनारे दूर-दूर तक फैली द्वारिकायें? जीवन के अमृत से परिपूर्ण! वैभव, सुख, ज्ञान को प्राप्त। इन सबसे दूर! देविका के किनारे झुके हुये वृक्ष से पीठ लगाये योग निद्रा निमग्न एक समाधिस्थ सन्यासी! स्वयं वासुदेव! गुरुकुल से गृहस्थ फिर वानप्रस्थ और अब सन्यास। जीवन को प्रकृति और पुरुष की लीलाओं के अनुरूप जीने की प्रेरणा के प्रतीक! वासुदेव सन्यास ग्रहण कर तपस्या में लीन हैं। उचित समय पर यथा आश्रम को धारण करना मनुष्य मात्र का धर्म है। प्रभु! समाधिस्थ हैं। तभी एक ओर से एक बहेलिया प्रकट होता है! बाण तरकस से निकालता है! कमान पर बाण आता। है। बाण सीधा समाधिस्थ योगी के चरणों में लगता है। बहेलिया अपनी भूल पर पश्चाताप करता है। आहत सन्यासी उसे क्षमाकर पुनः समाधिस्थ हो जाता है। विष अपना प्रभाव दिखाता है। पार्थिव देह देविका नदी की गोद में लुड़क कर गिर जाती है। एक दिव्य ज्योति पूज इससे पूर्व ही देह को त्याग कर गगन में लीन हो जाता है।

देविका की लहरों में उछाल आता है। नदी देवि का रूप धारण कर, करुण क्रन्दन करती प्रकट हो जाती है। साथ में बह रही दूसरी नदी हिरण्या और सरस्वती को पुकारती है। दोनों नदियाँ भी देवियों के रूप में प्रकट हो जाती हैं। नाटक चल रहा है।

देविका :-हिरण्या! सरस्वती!! आज धरती पर जघन्य अपराध हुआ है।

हिरण्या :-देविका! क्या हुआ है? क्यों दुखी हो।

सरस्वती :-तुम्हारे करुण क्रन्दन का कारण क्या है ?

देविका-समाधिस्य तपस्वी सन्यासी समाधि अवस्था में बाण द्वारा आहत हुआ है। उसका पार्थिव मेरी गोद में तैर रहा है।

हिरण्या :-समाधिस्थ सन्यासी के लिये तो मन में भी अपवित्र विचार नहीं ला सकते! उनका अपमान करने वाला महाविनाश को प्राप्त होता है। उनको आहत करने वाला कौन है? कौन है वे सन्यासी ?

देविका :-सन्यासी स्वयं वासुदेव हैं। सरस्वती :-नहीं! हिरण्या ?

देविका :-हाँ! सरस्वती! वासुदेव! उनका स्वरूप देखो! मौन चिर निद्रा निमग्न! मैं सहन नहीं कर पा रही हूँ। आज धरती को श्राप दूँगी। जिस धरती पर तपस्वी आहत होंगे। वह मुझसे अभिशप्त होगी। देह तो दूँगी।

देवत्व न होगा।

हिरण्या :-जहाँ पर सन्यासी और तपस्वी आहत होंगे। वहाँ धरती मुझसे अभिशप्त होगी! तपस्वी तो दूँगी! तप न होगा!

सरस्वती :-आज धरा मुझसे भी अभिशप्त होगी। ग्रन्थ तो दूँगी! ज्ञान न होगा।

तीनों देवियों ने जब धरा को अभिशप्त कर दिया तो भगवान श्री महाविष्णु प्रकट हो गये। शंख, चक्र, गदा, पद्म। तीनों देवियों ने उन्हें प्रणाम किया। उनकी स्तुति की। महाविष्णु ने तीनों को सम्बोधित किया। 'देविका! हिरण्या;! सरस्वती!! आज तुमने धरा को क्यों अभिशप्त कर दिया? क्या तुम नहीं जानती थीं कि बहेलिया और कोई नहीं स्वयं धर्मराज था।

जब धरा मोहवश मुझे छोड़ नहीं रही थी। देवलोक में देवताओं ने धर्मराज से कहा कि तुम्ही जाकर नारायण को लौटाकर लाओ। तब धर्मराज ने कहा कि नारायण को पाश में बाँधकर लाने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। देवताओं द्वारा समझाये जाने पर उसने बाण द्वारा मुझे प्रणाम करके सचेत किया कि नारायण लौटने के क्षण हैं।

देविका! तुम्ही तो देवकी हो जो माँ बनकर मुझे तन देती हो। हिरण्या! तुम्हीं तो यशोदा हो जो तन का श्रृंगार देती हो सरस्वती! तुम्ही तो राधा हो जिसके साथ में ज्ञान लीला करता हूँ!

तुमने जानते हुये भी कि यह मात्र लीला थी! धरती को अभिशप्त क्यों किया।

तीनों देवियों ने पुनः प्रणाम कर, उत्तर में, प्रश्न किया :

''नारायण! जब धर्मराज ने आपके श्री चरणों में बाण द्वारा प्रणाम किया तब आप कौन सी लीला कर रहे थे ?''

महाविष्णु :-'समाधिस्थ सन्यासी की!''

देवियाँ :-''हमने भी लीला में ही श्राप दिया! जब भी समाधिस्थ, योगी, तपस्वी, सन्यासी आहत होंगे। धरा अभिशप्त होगी!''

महाविष्णु :-'परन्तु! अभिशप्त धरा कहाँ हुई? अभिशप्त तो मैं ही हो गया ?

तीनों देवियाँ रूह्नारायण! इसीलिये तो श्राप दिया! आप हम अनाथ को छोड़कर कहाँ जा रहे थे!''

नेपथ्य से गूंजती वेद व्यास की वाणी :-

इस प्रकार स्वयं सृष्टा, अभिशप्त होकर, हर घट में, आत्मा होकर विराजमान है। उसका उद्धार करो। तपस्या को तप दो। देह को देवत्व दो, ग्रन्थो को नहीं, ज्ञान को धारण करो। स्वयं को पहचानों! तुमको तुम्हारी कहानी सुना रहा था। तुमको, तुम्हारी लीला दिखा रहा था। स्वयं को पहचानो।

आज भी ब्रह्म ज्वालायें ही तो देविका होकर प्रत्येक बालक को देह रूपी गर्भ में अन्न से मानव तन प्रदान करती हैं। माँ प्रकृति ही तो यशोदा है जो तन का श्रृंगार देती है। वेद का ज्ञान ही तो सरस्वती है जिसके साथ तुम्हें पवित्र तप लीला करनी है। देह को देवत्व दो! तपस्या को तप दो! ग्रन्थों से अमृतमय ज्ञान लो! आत्मा वासुदेव से अद्वैत कर शापमुक्त हो! गो लोक में प्रवेश करो! जय हो तुम्हारी!

रहस्य लीलाओं का जादूगर वेद व्यास अपने काल में सारे विश्व में अनूठा था और आज भी अनूठा है! दूसरा होना बाकी है! वेद व्यास की जन्म लीला; ऊखल लीला, पारिजात लीला! ऐसी असंख्य लीलायें हैं जिन्हें आपको सुना नही पाया हूँ। आज का प्रवचन तो वासुदेव की परिचय भूमिका मात्र है। जिस दिन श्रीकृष्ण की कथा सुन लोगे उसके ही हो जाओगे! इसमें संशय नहीं है! अब कथा का उपसंहार करते हैं!

एक ओर है कंस, उसके मायावी असुर पत्नियाँ, जरासन्ध और कालयवन! दूसरी ओर हैं, श्रीकृष्ण की लीला! जिसने बाल्यावस्था में ही पूतना, अघासुर, बकासुर आदि असुरों को मारकर, ग्यारहवें वर्ष में कंस को मारा। उसका ही जीवन सार्थक है। वही अस्ति और प्राप्ति के भ्रमजाल से बच सका। परन्तु अभी जरासन्ध तो देहरूपी मथुरा पर निरन्तर आक्रमण करेगा। जो आत्मवत् जीयेगा वही जरासन्ध को सतरह बार परास्त कर सकेगा। विषयी की सन्धियां तो जरासन्ध तोड़ेगा ही। अट्ठारहवीं बार कालयवन को लेकर आवेगा। वहीं बचेगा उससे; जो प्रवर्षण (जहाँ श्री हरि चिन्तन की निरन्तर अमत वर्षा हो), पर्वत से द्वारिका (ब्रह्म रन्ध्र) में प्रवेश पावेगा। उसको जरासन्ध कुछ भी न बिगाड़ पावेगा। कालयवन (समय) समाप्त हो जावेगा। समय योगी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

भगवान श्रीकृष्ण ने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। उनका पहला विवाह रुक्मिणी से हुआ। यह विवाह भी रुक्मिणी देवि की प्रार्थना पर उनका

उद्धार करने हेतु प्रभ को जाना पड़ा। कथा लम्बी है! फिर सुनावेंगे। अष्ठ सिद्धियों (रानियों) की कथा भी नहीं सुना पाये हैं। फिर सही!

भौमासुर का वध करने के उपरान्त साठ से चौसठ हजार बन्दी स्त्रियों भगवान ने मुक्त कराया। समाज उन्हें लेने को तैयार नहीं हुआ। वे असहाय भोली देवियाँ प्रभु से आज्ञा लेकर आत्मदाह करना चाहती थीं। समाज उन्हें पतित, वेश्या कहकर भी तो भोजन और जीने का अधिकार नहीं देना चाहता था। वासुदेव ने सुना तो रो पड़े! श्री भगवान ने उनको सम्बोधित करके कहाः- देवियों! आपकी व्यथा पीड़ा का मुझे पूरा भान है। भौमासर के बन्दीगृह से छुड़ाकर भी मैं आपको आपका उचित सत्कार नही दिलवा पा रहा हूँ। दोषी मैं ही हूँ। आप सब निर्दोष हैं! निष्पाप हैं आप क्यों आत्मदाह करें।

यदि आपको समाज स्वीकार करने से संकोच करता है तो आप कतई दुख न करें। द्वारिकाधीश ही आपको स्वीकारते हैं। द्वारिकाधीश ही आपके पति हैं, पिता हैं, पुत्र हैं। आप ससम्मान जीवन को धारण करें। आपकी रक्षा सेवा जीवन का भार द्वारिकाधीश पर है। कोई भी आपको हेय दृष्टि से नहीं देख सकेगा। आप पूज्य है! देविका है! यशोदा हैं!! यदि समाज आपको उचित सम्मान सहित ग्रहण करता है तथा आप उन्हें स्वीकारती हैं! तो हर रूप में हर ओर मैं ही हूँ! आप निःसंकोच अग्रसर हों!।

श्री भगवान ने क्षत्रिय, यादव एवं ब्राह्मणों को भी समझाया कि धर्म के नाम पर दूसरों को पीड़ा न दें। असहाय, दीन एवं सताये हुए कि सेवा ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है! प्रभु की लीला अपरम्पार है! उनकी कथा अनन्त है!

सुइयाँ अद्वैत की ओर बढ़ रही हैं। दो से एक होना चाहती हैं। प्रभु के प्रकट होने के क्षण पास आते जा रहे हैं। हम भी सूईयों की भाँति श्री हरि से। अद्वैत करें। मून्द के आँख एक हो जायें। देह में प्रभु को प्रकट करें। कृष्ण सेवन करें। कृष्ण रूपी पवित्र सात्विक विचारों को जन्म दें। आज के कथा प्रसाद का नित्य सेवन करें।

आज प्रभु के प्रकट होने की लीला भी अति अद्‌भुत है। भक्त दम्पति खीरे काट कर बाल कन्हैया को प्रकट करते हैं। खीरा अपभ्रंश है! फूट ककड़ी का ही प्राचीन काल में प्रयोग होता था। फूट ककड़ी न मिलने पर उसके स्थान पर खीरे का भी प्रयोग होता था। आज का मन्त्र महा मृत्युंजय

है।

इस मन्त्र में उपमा स्वरूप फूट ककड़ी का ही वर्णन आया है। जीव को अमरत्व दे वही महामृत्युञ्जय है।

"त्रयम्बकम् यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनमः।।
ऊर्वारूकमिव बन्धनान मृत्योमुक्षीय मामृतात् ॥"

अर्थ करें। हे! त्रयम्बकम्' अर्थात् धारण सृजन और संहार के 'यजाम्। यज्ञों के द्वारा 'अहे' अहो! 'सुगन्धि' जड़त्व को सुगन्धित पवित्र वनस्पतियों में तथा वनस्पतियो को 'पुष्ठि' पुष्ठ शरीरों में 'वर्धनम' निरन्तर वृद्धि करने वाले! हे वर्धमान (विष्णु)! हे प्रभु आप ही तो धारण, 'सृजन' संहार (अ+उ+म = ऊँ) के यज्ञों द्वारा भस्मी को सुन्दर फलों तथा फूलों को नाना जीवों की पुष्ट देहों में, आत्मा होकर निरन्तर यज्ञों द्वारा प्रकट करते हो। ऊर्वारूकम् 'इव' (ऊर्वारूकमिव) उस फूट ककड़ी (ऊर्वारूकम) की भाँति (इव) जिस प्रकार फूट ककड़ी अपने अर्न्तदाह से स्वयं फट जाती है। किसी को उसके वाह्य प्रहार से फाड़ने की आवश्यकता नहीं होती। स्वयं फट जाती है। उसको अन्तरदाह ही उसे फाड़ देता है। उसी फूट ककड़ी की भाँति! हे! कृष्ण! हे वासुदेव! तपस्या की अग्नियों से मैं स्वयं अन्तरदाह से इस देह को फाड़कर भस्म करके, आत्म ज्वालाओं में 'मृत्योर्मुक्षीयमामृतात आवागमन की सीमाओं को तोड़ता अनन्त में व्याप्त हो जाऊँ! प्रभु आज कुछ ऐसी कृपा करो मुझपर। हे नाथ! हे माधव! मैं शरण हूँ आपकी! आपने गीता में निष्पाप अर्जुन को सारे रहस्य बताये हैं। आप ही ब्रम्हां हैं! आप ही महेश हैं! आप ही शंकर हैं! छन्दों में गायत्री, प्रणवों में ओंकार, नदियों में गंगा, पर्वतों में हिमालय और सम्पूर्ण भूत प्राणियों के हृदय में आत्मा होकर वास करने वाले भी आप हैं! हे कृष्ण! आपके इस देह में रहते हुये भी यदि कालयवन और जरासंध मेरा भक्षण करें तो मुझ जैसा हतभाग और कौन होगा! हे नारायण! वासुदेव! हे लीलाधाम! मुझपर कृपा करो! मुझमें संकल्प और शान्ति का संचार करो! हे नारायण! मेरे जीवन में आज जन्म हो तुम्हारा! सम्पूर्ण असुर नष्ट हो जावे।! आज यह जीव! आपका दास आपका ही अनुचर बने। द्वारिका में प्रवेश पावे! हे द्वारिकाधीश! अब हर ओर तुम्हीं हो! तुम्हें ही देखें! तुम्हें ही गाऊँ! तुमसे ही ग्रहण करू! तुम्हारी ही सेवा में हर क्षण लगा रहूँ! हर साँस और धड़कन गाये तुमको हे देव! घड़ी की मिलती हुई सुइयों की

भाँति! हे अंर्तदेव मैं तुममें ही एकीभाव से अद्वैत कर जाऊँ! दो सुइयाँ एक हो गयी हैं। जीव और आत्मा को एक करो! मून्द के आँख वासुदेव में खो जाओ रे भक्तों! हर ओर प्रणाम है! प्राणी मात्र के श्री चरणों में प्रणाम है। भक्त सागर! सनातन स्वामी का दण्डवत प्रणाम लो! आप सब वासुदेव हैं! मेरे गोपाल हैं! सबको प्रणाम है! भीतर बाहर! वासुदेव! तू ही तू है! तू ही तु है! एकोब्रम्ह द्वितीय नास्ति! कृष्ण!! कृष्ण भजो रे! डूब जाओ कृष्ण रूपी प्रेम के सागर में! जो उबरे सो पापी! गहरे उतरते जाओ! समाधिस्थ होकर कृष्ण की बांसुरी सुनो! वृन्दावन में नाचो, झूमो, गाओ! गोविन्द हरि!

सीमिति साधन के अतिरिक्त बस नारायण ही हैं। उपेक्षा है, वंचक भाव है, घुटन है, इसके बाद भी जीवन को ईश्वरमय बनाने की इस प्रभु की बगिया की, रक्षा, सेवा का संकल्प है।

सनातन संस्कृति के मौलिक स्वरूप को यथा सामर्थ्य फैलाने की चाहत है।

–सनातन प्रेम

गुर्रुब्रह्मा, गुर्रुविष्णु, गुर्रुदेवो, महेश्वरः।
गुरुसाक्षात परंब्रह्म, तस्मैं श्रीगुरुवैनमः।।

श्री स्वामी सनातन श्री

गुरुरेवपरंब्रह्मं गुरुरेव परागतिः।
गुरुरेव पराविद्या गुरुदेव परायणम्।।

गुरु ही परायण के योग्य हैं।